कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

नवज्योति

नव-ज्योति

भाग ३

(संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा परीक्षा के लिए)

सम्पादक
विश्वनाथप्रसाद मिश्र
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय

प्रकाशक
विद्या-मंदिर
ब्रह्मनाल .. वाराणसी-१
१९६८

विक्रेता

विद्या-मन्दिर

ब्रह्मनाल, वाराणसी।

षोडश संशुद्ध संस्करण

सितम्बर १९६८

११०० प्रतियाँ

मूल्य १.४० पै०

मुद्रक :—

के० कृ० पावगी,

हितचिन्तक प्रेस,

रामघाट, वाराणसी-१

अन्तर्दर्शन

भारतीय पराधीनता की अन्तिम कड़ी टूटने के साथ ही केवल क्लर्क पैदा करने के उद्देश्य से दी जाने वाली शिक्षा का युग समाप्त हो गया। अब हमारे विद्यार्थियों के सामने उज्ज्वल भविष्य की सुनहरी उषा, प्राची का वातायन खोलकर झाँक रही है। अब हमें नेता, सेनानी, विचारक, साहित्यकार, इंजीनियर, वैज्ञानिक और कला-शिल्पियों की आवश्यकता है।

बालक का मन कच्ची मिट्टी के समान होता है। कुम्हार अपने चाक के सहारे कच्ची मिट्टी को मनोवांछित रूप देता है। इसी प्रकार शिक्षक शिक्षा के माध्यम द्वारा बालक के भविष्य का निर्माण करता है। बालक के मन में यह भावना कूट-कूट कर भर देनी चाहिए कि मैं महान हूँ और अवसर प्राप्त होने पर अपनी शक्तियों का पूरा-पूरा विकास कर सकता हूँ।

यह कार्य भाषा-शिक्षा के द्वारा बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। भाषा विचारों और भावों की वाहिका है। अतः भाषा-शिक्षा के द्वारा नवीन-प्राचीन अनेक प्रकार के भावों और विचारों से विद्यार्थियों [illegible] वय कराया जा सकता है जिनसे प्रेरणा ग्रहण करके उनमें [illegible]श और विश्व के सम्बन्ध में कुछ जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो [illegible] स्वयम् कुछ सोच सकें। आज की संक्रान्ति-कालीन परिस्थिति में उन पथनिर्देश की बड़ी आवश्यकता है। दो छोरों पर रहनेवाले व्यक्तियों की बातों की भूल-भूलैया में वे अपना कर्त्तव्य नहीं निर्धारित कर पाते। भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावनाओं के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ फैलाई जा रही हैं। अतः विद्यार्थियों के सामने प्रारम्भ में ही सही वस्तु रख देनी चाहिये। साहित्य और कला के सौन्दर्य-बोधों तथा

वैज्ञानिक विचार-सरणियों से भी उनका प्रारम्भिक परिचय कराना इसका मुख्य उद्देश्य है।

उपर्युक्त बातों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये उपयुक्त पाठ्य-सामग्री का चयन और अनुकूल शिक्षण-विधि आवश्यक है। उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम और निर्देशों के पालन करने से हमारे उद्देश्य की बहुत कुछ पूर्ति हो जाती है, फिर भी जो कमी रह जाती है उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक पाठ सम्मिलित कर लिये गये हैं।

पाठ्य-सामग्री के चयन, सम्पादन और लेखन में यह बात ध्यान में रखी गयी है कि यह छात्रों के मनोविकास में सहायक हो और उनके हृदय और बुद्धि का संस्कार कर सके। बालकों के मन में राष्ट्र के प्रति प्रेम, समाज-सेवा का भाव और विश्वबन्धुत्व की भावना जगाने की दृष्टि से भी पाठ्य-सामग्री के लेखों का चयन या लेखन हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन करते समय हमारे सम्मुख सातवीं कक्षा की पुस्तक रही है। इसलिए इस पुस्तक में भाषा तथा विचार दोनों सातवीं कक्षा की भाषा-पुस्तक के भाषा-विचार से ऊँचे स्तर के हैं।

भाषा और विषय की दृष्टि से पाठों में क्रमिक विकास मिलेगा। वर्णनात्मक और भावात्मक विषय पहले और विचारात्मक विषय बाद में रखे गये हैं। विचारात्मक विषयों की भाषा यथासम्भव सरल रखी गयी है जिससे विद्यार्थियों को सुगमतापूर्वक विषय का बोध हो जाय। विभिन्न रचना-शैलियों के उदाहरण भी इस संग्रह में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। संग्रहीत लेख प्रसिद्ध तथा प्रतिनिधि-लेखकों के लिखे हुए हैं।

कविताओं के संकलन के सम्बन्ध में निवेदन कर दूँ कि प्रत्येक युग के प्रतिनिधि-कवियों की रचनाओं को संग्रह में स्थान दिया गया है। वर्त्तमानकाल के प्रगतिशील कवियों की रचनाएँ भी संग्रहीत की गई हैं।

विषय और भाषा की विविधता का ध्यान कविताओं के संग्रह में भी रखा

गया है। कवितागत अनेक शैलियों के उदाहरण भी संग्रहीत कविताओं में मिल जाएँगे।

इस बात का ध्यान रखा गया है कि नर-नारी, देश-विदेश, ग्राम-नगर आदि विविध प्रकार की आवश्यक सामग्री का आकलन हो जाय और सब प्रकार के छात्रों का ज्ञानवर्धन तथा अनुरंजन करे। यही दृष्टि चित्रादि की योजना में भी रही है। बालोचित चपलता के लिए अवकाश देकर भी उनमें गुरु-गम्भीर उत्तरदायित्व को सँभाल सकने की क्षमता के संवर्धन का लक्ष्य रहा है। बालक-बालिकाओं दोनों की अभिरुचि और मनोविकास के अनुकूल समुचित सामग्री संकलित करने का प्रयास रहा है।

शिक्षण-विधि का महत्त्व पाठ्य-सामग्री से किसी प्रकार कम नहीं है, अतएव इस सम्बन्ध में परामर्श के रूप में अपने शिक्षक-बन्धुओं से कुछ कह देना अनुचित नहीं है। पाठ का आरम्भ करने के पूर्व शिक्षकों को ऐसी परिस्थिति प्रस्तुत करनी चाहिए जिसका सीधा सम्बन्ध उस पाठ से हो। पाठ के प्रवेश से भी इसमें कुछ सहायता मिल सकती है। मौन पाठ के पहले क्लिष्ट शब्दों की व्याख्या कर देनी चाहिए। फिर छात्रों से प्रश्न करके समझ लेना चाहिए कि उन लोगों ने पाठ का सार ग्रहण किया अथवा नहीं। छात्रों के ध्वनि-पाठ (लाउड रीडिंग) के पहले अध्यापक को आदर्श पाठ का उदाहरण उपस्थित करना चाहिए, जिससे छात्र उसका अनुकरण कर सकें।

इसके अनन्तर अनुशीलन के अन्तर्गत चिन्तनार्थ प्रश्नों को छात्र से पूछने पर ठीक-ठीक पता लग जायगा कि छात्र ने उस पाठ का अभिप्राय समझ लिया है। लेखनार्थ प्रश्नों को जहाँ तक सम्भव हो लिखना ही अच्छा है। इससे छात्रों के ज्ञान में स्थिरता आती है। व्याकरण का

अभ्यास पाठ के साथ कराने से व्याकरण की अरोचकता बहुत कुछ कम हो जायगी।

कविता और गद्य में वही अन्तर है जो भाव और विचार में। कविता का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में सौन्दर्य-बोध का संस्कार डालना तथा उनके भावों का परिष्कार करना है। इसकी शिक्षण-विधि गद्य की शिक्षण-विधि से कुछ भिन्न होनी चाहिए। कविता में सस्वर पाठ का बड़ा महत्व है। पाठ मात्र से बहुत कुछ भाव-बोध हो जाता है। सस्वर पाठ से गाकर पढ़ने का अर्थ न लेना चाहिए। प्रत्युत इसका अर्थ पढ़ने की कला है। कविता-शिक्षण में भाव-सौंदर्य तथा अभिव्यक्ति की शैली पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जिन लेखकों और कवियों की रचनाओं का समावेश इस पुस्तक में किया गया है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए इसकी क्षमा भी चाहता हूँ कि इन संग्रहीत रचनाओं को छात्रोपयोगी बनाने के लिए उन्हें आवश्यकतानुसार संशोधित तथा परिवर्तित कर दिया गया है। आशा है लेखकबन्धु अन्यथा न समझेंगे।

रामनवमी, २००७ —सम्पादक

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ

---

१. जय राष्ट्रपिता

(परिचय—श्री सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी के सुकुमार कवि हैं। इनका जन्म प्रकृति की अत्यन्त रमणीय भूमि अल्मोड़ा में हुआ था। छायावाद के तीन प्रमुख कवियों—प्रसाद, निराला और पन्त—की त्रयी चिरस्मरणीय रहेगी। वीणा, पल्लव, युगान्त, युगवाणी, स्वर्णकिरन, स्वर्णधूलि, उत्तरा और युगपथ आपकी कविताओं के प्रमुख संग्रह हैं। प्रकृति की जीती-जागती तसवीर उतारने में पन्तजी परम कुशल हैं।)

प्रवेशक—यह कविता भारत के राष्ट्रपिता युगपुरुष महात्मा गांधी के प्रति है।

अविजेय अपराजित पथ चक्रदल

जय हे,

जय राष्ट्रपिता, जय जय हे।

देव विनय, अविजेय आत्मबल,
शुभ्र वसन, तन कान्ति तपोज्ज्वल,
हृदय क्षमा का सागर निस्तल,
शान्त तेज नव सूर्योदय, जय जय हे।

नव प्रभात लाये तुम जन-प्रांगण में,
जीवन के अरुणोदय से हँस मन में,
अपराजित तुम रहे, अहिंसक रण में,
सत्यशिखर के पान्थ अभय, जय जय हे।

पशुबल का हर, अन्धकार जन-दुस्तर,
मनुष्यता का मुख कर संस्कृत, सुन्दर,
विचरे स्वर्ग-शिखा ले तुम धरती पर,
मनुजों के मानव चिर मंगलमय हे।

हिन्दू मुस्लिम युगल बाहुबल,
पदतल पर नत जीवन का छल,
फहर तिरंग चक्रदल प्रतिपल,
हरत जन-मन-भय-संशय, जय जय हे।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) राष्ट्रपिता के किन-किन गुणों का उल्लेख इस कविता में है? (२) 'मनुजों के मानव' का तात्पर्य समझाओ। (३) 'पदतल पर नत जीवन का छल' का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट करो।

अलंकार लेखनार्थ—(१) राष्ट्रपिता के चरित्र का चित्रण करते हुए लेख लिखो। (२) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ लिखो और इनका स्वरचित वाक्यों में प्रयोग करो—आत्मबल, अरुणोदय, संस्कृत।

आदेश—इस कविता का सस्वर पाठ करो और इसे कंठाग्र कर लो।

---

२. राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद

(परिचय—इस लेख के लेखक श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। आप गद्य भी बहुत अच्छा लिखते हैं। आपकी कविताओं के रेणुका,हुंकार, रसवन्ती आदि कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इधर आपने 'कुरुक्षेत्र' काव्य लिखा है। आपके आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह 'मिट्टी की ओर' नाम से प्रकाशित हो चुका है।)

प्रवेशक—प्रस्तुत निबन्ध में हमारे राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू के व्यक्तित्व और विचारधारा का परिचय बड़े ही मनोरंजक ढंग से दिया गया है।

औद्योगिक माध्यम व्यक्तित्व
अवदान जाज्वल्यमान

गांधीजी ने एक बार कहा था कि मैं जिस भारतीय प्रजातन्त्र की कल्पना करता हूँ उसका अध्यक्ष किसान का बेटा नहीं, बल्कि कोई किसान ही होगा।

संयोग की बात कि गांधीजी की भविष्यवाणी प्रजातन्त्र के जन्म के साथ ही पूरी हो गई और भारत के गौरवशाली प्रजातन्त्र के पहले ही अध्यक्ष-पद पर हमारे जो परम श्रद्धेय नेता आसीन हुए हैं वे सही मानी में स्वयम् किसान या किसान के बेटे न होते हुए भी, किसानों के ही समान हैं। उनका स्वभाव अगर इस विशाल देश में बसनेवाली जनता के किसी एक वर्ग से पूरी तरह मेल खाता है तो वह वर्ग किसानों का है, जिनकी निश्छलता, सादगी और कर्मठता की पूरी झलक राजेन्द्र बाबू के व्यक्तित्व में मिलती है।

किसानों की तरह ही उनकी वैयक्तिक आवश्यकताएँ बहुत कम तथा उनका स्वभाव अकृत्रिम एवम् उन्मुक्त है। जिसे हम नागरिकता कहते

(१४)

राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद

हैं उसकी तो राजेन्द्र बाबू पर छाप भी नहीं पड़ी है। उसमें जो एक प्रकार का चौकन्नापन, एक तरह की चौकसी, तेजी और आडम्बर-जन्य स्फूर्ति होती है, उससे वे बिलकुल अपरिचित हैं। उनसे बातें करते हुए आप पर यह प्रभाव पड़ ही नहीं सकता कि आप अनिमन्त्रित या अनचाहे व्यक्ति हैं। प्रथम दर्शन के साथ ही वे आपके विश्वासभाजन बन जाते हैं। उनकी आँखों में अनिर्वचनीय शीतलता है, उनके आनन पर एक प्रकार की सहज आर्द्रता है, जो आपके विश्वास को प्रेरित करती है तथा जिससे आपको यह प्रोत्साहन प्राप्त होता है कि आप अपने मन के भावों को निःसंकोच होकर कह जायँ।

आपने राजेन्द्र बाबू की बहुत सी तस्वीरें देखी होंगी और आपको बार-बार ऐसा लगा होगा, मानों किसी ने छिपकर उनका फोटो उतार लिया हो। उनका कोई-कोई चित्र ऐसा भी है जिसे देखकर, आपमें दया और भक्ति एक साथ उत्पन्न होती है। दया उनकी आकृति पर छायी हुई अपरिमेय निरीहता के लिए और भक्ति इस बात के लिए कि वे इतने महान् होते हुए भी ऐसे निरीह हैं। निरीह शब्द में जो पवित्रता और दया के आमन्त्रण का भाव है, वही पवित्रता, निर्दोषता और दयनीयता, राजेन्द्र बाबू की आकृति पर विद्यमान मिलती है। केवल आकृति ही नहीं, चित्र में भी उनके ये गुण सजीव मालूम होते हैं और उन्हें देखकर अनायास यह भाव उठता है कि यह मनुष्य किसी का भी अमंगल नहीं सोच सकता। अपनी आत्मकथा में कर्तव्यपालन के एक कठोर प्रसंग में राजेन्द्र बाबू ने स्वयं लिखा है — "मुझ जैसे आदमी के लिए, जिसे किसी के साथ कटुता पैदा करने में बहुत दुःख होता है, ऐसा अनचाहा काम भारी मुश्किल पेश करता है।"

किन्तु जहाँ कर्तव्य की पुकार होती है वहाँ अनिच्छापूर्वक भी उन्हें उनका पालन करना पड़ता है। अनिच्छापूर्वक उन्हें त्रिपुरी के बाद कलकत्ते में कांग्रेस का सभापतित्व स्वीकार करना पड़ा। अनिच्छापूर्वक

उन्हें दूसरी बार भी कृपलानी जी से कांग्रेस के सभापतित्व का भार ग्रहण करना पड़ा। अनिच्छापूर्वक उन्हें जितना जहर पीना पड़ा है उसे देखते हुए देश उन्हें अपने समय का शंकर मानता है और आत्मदलन के द्वारा उन्होंने जो सुयश प्राप्त किया है उसे देखते हुए जनता उन्हें अजातशत्रु का अवतार कहती है राजेन्द्र बाबू दोनों ही हैं। जिस जहर को देखकर सबका हृदय डोलने लगता है उसे वे सबके कल्याण के लिए स्वयम् पी जाते हैं और मैत्री, सद्भाव एवम् आत्मीयता की रक्षा के लिए वे खुशी-खुशी अपने आपको दबा देते हैं।

भारतीय किसान से राजेन्द्र बाबू के स्वभाव के जिस मेल का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह उस समय और भी विस्मयकारी एवम् श्रद्धा-प्रेरक हो उठता है जब हम यह सोचते हैं कि सज-धज, चौकसी और ऊपरू बनाव के सम्पूर्ण अभाव के नीचे उनमें अत्यन्त उच्च कोटि की एक ऐसी बौद्धिकता का निवास है जिसका जोड़ा मिलना मुश्किल है। राजेन्द्र बाबू अपने समय में पूर्वी भारत के सर्वश्रेष्ठ छात्र थे तथा अपने सुदीर्घ सार्वजनिक जीवन में उन्होंने चिन्तन-शक्ति और बहुज्ञता का जो परिचय दिया है वह सहज ही उन्हें अपने समय के श्रेष्ठ विद्वानों एवं चिन्तकों के बीच बिठा देता है। वे कानून के सर्वप्रशंसित पंडित हैं। साहित्य के अनेक अंगों पर उनका असाधारण अधिकार है। संस्कृत के अध्ययन पर उन्होंने वर्षों पहले मुजफ्फरपुर में जो भाषण दिया था वह संस्कृत-प्रेमियों का आज भी पथ-प्रदर्शक बना हुआ है। यहाँ तक कि किसान-जमींदार अथवा बंगाली-बिहारी झगड़ों में भी पंच की हैसियत से उन्होंने जो निर्णय दिए वे बहुमूल्य लेख बन गये हैं।

जेल में बैठे-बैठे सहायक-ग्रन्थों के बिना ही उन्होंने 'खंडित भारत' नाम से जो पुस्तक लिखी, उसमें विभाजन के विषय पर विचार करनेवाले सभी लोगों के लिए उन्होंने सभी तर्क और सारे सुझाव एकत्र कर दिए।

अपने देश में बोली जानेवाली, शायद दो-एक ही ऐसी प्रमुख भाषाएँ होंगी जिसमें राजेन्द्र बाबू भाषण या वार्तालाप न कर सकते हों।

स्मरणशक्ति का यह हाल है कि जेल में आत्मकथा लिखने बैठे तो डायरी, नोट अथवा कतरनों और चिट्ठियों की फाइलों के बिना ही बारह-चौदह सौ पन्ने रंग डाले और कोई चालीस वर्षों का हाल इस विस्तार से लिख दिया मानो दिन में देखी हुई बातों का ब्यौरा सन्ध्या को लिख रहे हों।

कहते हैं जब वे खाद्यमन्त्री थे, तब फाइलें तो वे पौ फटने के पहले ही देख जाते थे और सहायक जब आदेश लेने आता तब वे चरखा भी चलाते जाते और साथ-साथ आदेश भी लिखाते जाते। सहायक ने फाइल का विषय बताया नहीं कि राजेन्द्र बाबू के दिमाग में उसमें लिखी सारी बातें चमक उठीं और उन्होंने अपना स्पष्ट निर्णय लिखा दिया।

विद्या का चमत्कार, चिन्तन की यह तीव्रता और स्मृति का यह आठो पहर जगा रहना क्या है और राजेन्द्र बाबू ने इन्हें कैसे प्राप्त किया होगा? कहते हैं भूलाभाई देसाई पंक्तियाँ नहीं, पृष्ठ पढ़ते थे और स्वामी विवेकानन्द भी उतनी ही देर में पुस्तक पढ़ जाते थे जितनी देर में वे उसके पन्ने उलटते थे। स्मृति के सम्बन्ध में कुछ ऐसी ही विलक्षण शक्ति राजेन्द्र बाबू को भी प्राप्त है।

विद्या के माध्यम से उन्होंने नवयुग के सार को तो अपना लिया है, किन्तु उसके बाहरी रूप-रंग और सज-धज को निस्सार समझकर छोड़ दिया है। यही कारण है कि नागरिक जीवन की चकाचौंध की एक भी झाँकी उनके व्यक्तित्व में हमें नहीं मिल सकती। अपने जीवन को इस देश की गरीब जनता के जीवन से एकाकार करने में उन्हें जैसी सफलता मिली, वैसी गांधी जी के बाद किसी और को नहीं मिली। सभी अवस्थाओं से गुजरते हुए, उन्होंने इस बात को बराबर याद रखा है कि मैं और कुछ होने के पहले भारत के किसानों का सेवक हूँ। हमारे नेताओं

में खान-पान, शील-स्वभाव, पहनावे और सहानुभूति की मूल शिराओं को लेकर, बाहर से भीतर तक जैसे किसान राजेन्द्र बाबू हैं, वैसा और कोई नहीं है।

यही कारण है कि देहात के लोग, उनके साथ एक प्रकार के सामीप्य का बोध करते हैं और उनके उद्‌गारों को वे अपना ही उद्‌गार समझते हैं। अगर भारतवर्ष सचमुच ही गाँवों में निवास करता है तो हमारे राजनीतिक नेताओं के व्यक्तित्व में जो लोग हमारे देश के दर्शन करना चाहते हैं, वे सबसे पहले राजेन्द्र बाबू के दर्शन करें। चौपाटी की रंगीनी, चौरंगी का शोर और कनाट सर्कस की चहल-पहल राजेन्द्र बाबू के व्यक्तित्व में नहीं है, बल्कि वे उस रंग में शराबोर हैं, जिस रंग में सन्ध्या गाँवों में उतरती है और जिस रंग में भारत के असंख्य किसान अपने भाग्य का दरवाजा खोलते हैं।

अपने गाँव में सभी प्रकार के लोगों से राजेन्द्र बाबू कुछ ऐसे घुले-मिले हैं कि गाँववालों को उनके व्यक्तित्व की विशालता का भान ही नहीं हो पाता। जब वे अपने गाँव जाते हैं तब प्रायः कोई न कोई बुढ़िया नयी पुरानी चिट्ठियाँ लिए हुए, उनके पास दौड़ती है और कहती है कि इन्हें आप ही पढ़ दीजिए, क्योंकि दूसरे लोग मेरी चिट्ठियाँ मुझे ठीक से नहीं सुनाते और इस महापुरुष की चकरा देनेवाली महत्ता देखिए कि ये बड़े ही प्रेम से बुढ़िया की चिट्ठी पढ़ देते हैं मानो यह भी विधान-परिषद् का ही कोई काम हो।

जीवन के सम्बन्ध में भी उनका दृष्टिकोण प्राचीनता के प्रति समुचित आदर देनेवाला दृष्टिकोण है। नवीनता के कितने ही अवदानों को उन्होंने क्रान्तिकारी उत्साह के साथ स्वीकार किया है। परदा-निवारण, अछूतोद्धार, अन्तर्जातीय विवाह और वैज्ञानिक शिक्षा के वे बहुत बड़े हिमायती हैं। किन्तु प्राचीनता के समूल विनाश में उनका तनिक भी

विश्वास नहीं है। जो चीजें चली आ रही हैं उनसे अगर कोई हानि नहीं है तो वे उन्हें रहने देना चाहते हैं। उनके रहने से क्या लाभ होगा इसे वे नहीं सोचते। वे केवल इतना ही जानना चाहते हैं कि उनके रहने से समाज को क्या हानि है। गोभक्ति और सम्मिलित परिवार की सत्ता में उनका अटल विश्वास, उनके दूसरे दृष्टिकोण के परिणाम हैं। संक्षेप में राजेन्द्र बाबू ग्रामीण भारत के जाज्वल्यमान् प्रतीक थे।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) भारतीय प्रजातन्त्र के अध्यक्ष के बारे में महात्माजी की क्या भविष्यवाणी थी? तुम कैसे कह सकते हो कि वह सत्य सिद्ध हुई? (२) भारतीय किसानों से राजेन्द्र बाबू का किन-किन बातों में मेल है? (३) राजेन्द्र बाबू की विलक्षण स्मरणशक्ति के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

लेखनार्थ—(१) अर्थ बताओ और वाक्यों में इनका प्रयोग करो—औद्योगिक, जाज्वल्यमान, प्रतीक, अनिर्वचनीय। (२) राजेन्द्र बाबू की सरलता तथा विद्वत्ता के बारे में जो कुछ जानते हो लिखो।

व्याकरण—(१) 'इच्छित' में 'अन्' उपसर्ग लगाने से 'अनिच्छित' शब्द बना। इस प्रकार 'अन्' उपसर्ग लगाकर पाँच शब्द बनाओ और बताओ कि 'अन्' उपसर्ग लगाने से शब्द के अर्थ में क्या अन्तर पड़ा? (२) व्यक्ति, बुद्ध, प्रजातन्त्र, विज्ञान और शिक्षा से विशेषण बनाओ।

—:o:—

३. देवता आये

(परिचय—इस कहानी के लेखक चक्रवर्ती राजगोपालाचारी भारतवर्ष के चोटी के नेता हैं। आप भारतवर्ष के अन्तिम गवर्नर-जनरल

थे। आप विलक्षण प्रतिभावान् राजनीतिज्ञ हैं। आप बड़े अच्छे लेखक और कहानीकार हैं। आपकी बहुत-सी कहानियों तथा पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में हो चुका है।)

प्रवेशक—इस कहानी में खादी की महत्ता का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है।

रूढ़ियाँ वृत्त धर्मपरायणा

'सुन्दर चेट्टियर कपड़े का व्यापारी था। उसने थोड़ी पूँजी से अपना व्यापार आरम्भ किया था, किन्तु ईमानदारी और बुद्धिमानी से उसका कारबार अच्छा चला। उसकी पत्नी मीनाक्षी धर्मपरायणा थी। जीवन की पुरानी रूढ़ियों पर चलनेवाली थी। प्रत्येक एकादशी को व्रत रहती थी। प्रतिदिन दोपहर को घर से बाहर जाती और कौओं तथा गिल-हरियों को चावल खिलाती, फिर आप भोजन करती। चेट्टियर अपनी पत्नी का बड़ा सम्मान करता था। उसे विश्वास था कि मेरी स्त्री के धर्मपरायणा होने ही से मेरे व्यापार में उन्नति होती है।

'जय सीताराम!' कहते हुए एक अधेड़ व्यक्ति ने संन्यासी के वेश में चेट्टियर के मकान में प्रवेश किया।

दीपावली से एक दिन पहले का दिन था। चेट्टियर की पत्नी ने दोनों हाथों में चावल लेकर उसका स्वागत किया। उस सम्मानित व्यक्ति ने कहा—मैं चावल नहीं लूँगा। यदि तुम्हारे यहाँ पक्का खाना तैयार हो तो दो।

'खाना अभी पका जाता है, एक क्षण रुकिए।' ऐसा कहकर उसने बैठने के लिए आसन रख दिया।

संन्यासी जब भोजन कर चुका तो उसने कहा—'माँ, तुम्हें कभी कमी न होगी, तुम धर्मात्मा और पतिव्रता हो। मैं तुम्हें एक मन्त्र बताऊँगा। यदि तुम अपने सिर पर तेल डाल स्नान करने के बाद इस मंत्र का जप करोगी तो तुम्हें अपने पूर्वज, देवताओं तथा साधुओं के दर्शन होंगे।'

सुन्दर चेट्टियर की भक्त धर्मपत्नी फूली न समायी और उसने वह मन्त्र सीख लिया। दूसरे दिन वह बड़े तड़के जागी। तेल लगाकर स्नान किया और एक सहस्र आठ बार मन्त्र का जप किया, जैसा कि साधु ने बताया था। ज्यों ही वह इतना कर चुकी उसने स्वागत का नाद तथा शंख की ध्वनि सुनी। पूजास्थान के सामने एक भीड़ एकत्र हो गयी। वहाँ एक वृत्त में बैठने के लिए सुन्दर स्थान बना था, जिस पर तेजस्वी पुरुष विराजमान थे।

उसने अपने परदादा, पति के परदादा तथा अन्य बहुत से लोगों को देखा। एक हाथ में बांसुरी थी, वे भगवान् कृष्ण जान पड़ते थे। उनके पास ही खड़े हाथ में धनुष लिए राम की भाँति एक व्यक्ति जान पड़ रहे थे। उनके पीछे ही बूढ़े वसिष्ठ खड़े थे। बलराम भी अपना हल लिए खड़े थे। पास ही परशुराम अपना परशु लिए दिखाई पड़े। भीम, अर्जुन तथा धर्मराज भी वहाँ थे। जिधर उसने दृष्टि फेरी पवित्र भारत के ऋषि-मुनि दिखाई पड़े। ऐसा जान पड़ा कि वे अपना रूप बदल देते हैं; कभी एक दूसरा देवता हो जाता है, कभी दूसरा पहला। देवताओं की भीड़ इतनी अधिक थी कि तिल रखने को स्थान न था। यह दशा देखकर मीनाक्षी 'नारायण-नारायण' कहते बेसुध हो गयी।

अपनी स्त्री की चिल्लाहट सुनकर चेट्टियर ऊपर से नीचे आया। उसने जो कुछ देखा, समझ न सका। विचित्र वेश में वे एकत्र व्यक्ति कौन हैं? यह नाटक किसने रचा है? उसने अपने हृदय में ये प्रश्न किए। वस्त्र का व्यापारी होने के कारण स्वभावतः उसने वस्त्र पर ही ध्यान दिया। उसने सोचा यह प्रदर्शन तो गाँधी जी के अनुयायियों का जान पड़ता है। सब खद्दर पहिने थे; कुछ महीन खद्दर, कुछ साधारण खद्दर, किन्तु सब किसी न किसी प्रकार का खद्दर ही पहिने थे।

'सज्जनों, आप लोग यहाँ क्यों आये हैं? पुलिस इस पर आपत्ति करेगी।' सबके सब इस प्रश्न पर हँसने लगे। 'आप जेल जाने को भी

श्री राजगोपालाचारी

तैयार हो सकते हैं, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकता।'—चेट्टियर ने कहा। 'आप किसी दूसरे के घर जा सकते हैं। पास के वकील साहब के मकान में चले जाइए और आप वहीं अपना प्रदर्शन कीजिए।'

चेट्टियर के पास एक बूढ़े व्यक्ति ने आकर कहा—'वत्स, क्या तुम मुझे पहचान नहीं रहे हो ? सुन्दर, मैंने तुम्हारे पिता को पैदा किया, तुम डर क्यों रहे हो ?' ऐसा कहकर उन्होंने उसको स्नेह से चूम लिया। चेट्टियर ने कहा—'यह सब ठीक है। आपके कार्य बहुत अच्छे रहे। मैं आपके पैरों पड़ रहा हूँ। कृपा करके आप मेरा मकान छोड़ दीजिए। मैं यहाँ पर खद्दर-सभा नहीं करना चाहता। आज पवित्र त्योहार है और ऐसे शुभ दिन पुलिस यहाँ आये और हमें तंग करे, यह ठीक नहीं।'

बूढ़े व्यक्ति ने कहा—'खद्दर से तुम्हारा क्या अभिप्राय ! हम लोग सिवा इसके और दूसरा कपड़ा नहीं जानते। मैं जब पृथ्वी पर रहता था तब यही कपड़ा पहनता था। हम सब यही कपड़ा पहनते थे। तुम्हारी धर्मपरायणा धर्मपत्नी ने हमें बुलाया और हम लोग जल्दी में चले आये।'

चेट्टियर बहुत परेशान था। यह वाहियात बात है। यह काँग्रेसजनों की सभा होगी; नहीं तो ये सब खद्दर क्यों पहनते। वह धर्मराज के पास गया। साष्टांग दंडवत् करके चेट्टियर ने कहा—'महाशय आप ईमानदार हैं, मुझे सच-सच बताइए कि यह सब क्या हो रहा है ?'

'पुत्र ! कोई अनुचित कार्य नहीं हो रहा है और तुम्हें डरने और सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है। जब हम लोग पृथ्वी पर रहते थे तब सिवा घर के बने कपड़े के और किसी दूसरे कपड़े को जानते ही न थे। तुम उसे खद्दर कह सकते हो, किन्तु उन दिनों दूसरा कपड़ा नहीं था जिसे हम लोग पहनते। उन दिनों भारत में बाहर से कपड़ा नहीं आता था। हम इसे बाहर भेजते थे। हमारे देश में या देश के बाहर कोई दूसरी मिल नहीं थी। हम लोग अब तक स्वर्ग में भी यही कपड़ा पहनते थे। तुम लोग भी यही क्यों नहीं पहनते ? सुनता हूँ देश में बड़ी गरीबी है। क्या ठीक है ?'

बहुत हिम्मत दिलाने के बाद चेट्टियर उठा और बड़ी सावधानी से अपने अंगूठे और उँगलियों से उन सबों के कपड़े की परीक्षा की। राम, बलराम, कृष्ण, परशुराम, भीष्म, अर्जुन सब शुद्ध खद्दर के कपड़े पहने हुए थे।

यह विचित्र बात है। मैंने सोचा था कि महात्मा गांधी ने ही इसका आरम्भ किया था और लोगों से खद्दर पहनने को कहा था। चेट्टियर ने सोचा कि इस सभा के सब लोग खद्दर पहने हुए हैं। उसने अपनी स्त्री की ओर देखा। मीनाक्षी की बेहोशी दूर नहीं हुई थी कि सब लोगों ने एक साथ कहा—'भगवान तुम्हारा कल्याण करें, अब हम जा रहे हैं!' और सब ने कमरा खाली कर दिया।

यह सच है कि हमारे पूर्वज दूसरे क़िस्म के कपड़े का प्रयोग नहीं करते थे। उनके कफन भी उसी कपड़े के थे और स्वर्ग में भी उसे ही पहन रहे हैं। तो हम लोग उसे क्यों न पहनें। हम समझते हैं कि हम लोग अपने पुराने गौरव को खद्दर के कारण फिर पा सकेंगे।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) मन्त्र से तुम क्या समझते हो? (२) मीनाक्षी क्यों बेसुध हो गयी? (३) उनके मकान में एकत्र भीड़ को देखकर पुलिस क्यों आपत्ति करती?

लेखनार्थ—(१) धर्म शब्द से धर्मपरायण, धर्मशील, धर्मात्मा, विशेषण बनते हैं। इसी प्रकार कर्म और कर्तव्य शब्द से विशेषण बनाओ। (२) निम्नांकित का वाक्यों में प्रयोग करो—फूली न समायी और तिल रखने की जगह न थी। (३) अपने को चेट्टियर समझकर सारी घटना का वर्णन करते हुए अपने मित्र को एक पत्र लिखो।

व्याकरण—प्रस्तुत पाठ के पहले अनुच्छेद के निम्नलिखित शब्दों की पदव्याख्या करो—किन्तु, सम्मान, पतिपरायणा, प्रतिदिन।

---

४. ग्राम

(२५)

(परिचय—'ग्राम' के प्रणेता श्री गोपालशरण सिंह रीवाँ राज्य की नयी गढ़ी के रईस हैं। आप खड़ी बोली में ब्रजभाषा की माधुरी भरने में कुशल हैं—विशेषकर कवित्तों में। इनकी भाषा सरल और भाव हृदय के निश्छल उद्गार होते हैं। माधवी, ज्योतिष्मती, संचिता आदि इनके कई कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।)

प्रवेशक—प्रस्तुत कविता में गाँव की सभी विशेषताओं का मनोहर वर्णन हुआ है।

आख्यान मूर्तिमान अधिवास ज्योतिष्मान्
बाह्य अस्तित्व

प्रकृति सुन्दरी की गोदी में,
खेल रहा तू शिशु-सा कौन !
कोलाहलमय जग को हरदम,
चकित देखता है तू मौन।

जग के भोलेपन का प्रतिनिधि,
सहज सरलता का आख्यान।
विमल स्रोत मानव-जीवन का,
तू है विधि का करुण विधान।

भव्य-भाव-भांडार अलौकिक,
सत्य-शीलता का आगार।
पारावार प्रेम का तू है,
दुःख-दीनता का आधार।

छिपा मही के मृदु अंचल में,
जग का मूर्तिमान अनुराग।
तुझसे ही सीखता जगत् है,
औरों के हित करना त्याग।

भोली ललनाओं से लालित,
विश्व-पुष्प का पुण्य पराग।
कृषकों के श्रम-जल से सिंचित,
जग का छोटा-सा है बाग।

लघु होकर भी तू विशाल है,
है छू गया न तुझे गरूर।
जग-सर का पंकज है, पर तू
मलिन पंक से रहता दूर।

होकर भी असभ्य तू ही है,
विश्व-सभ्यता का आधार।
स्वावलम्ब की समुचित शिक्षा,
पाता तुझसे है संसार।

होता है अंकुरित सर्वदा,
खेतों में ही तेरा ज्ञान।
भू-शय्या पर तू करता है,
शीतल सोम-सुधा-रस-पान।

सरल बालकों का क्रीड़ा-स्थल,
जगती के कृषकों का प्राण।
करता है इस विपुल विश्व का,
तू ही सदा क्षुधा से त्राण।

ईश्वर से डरता है हरदम,
होकर भी तू सच्चा शूर।
दीन-हीन है, तो भी रहता,
है तू लोभ-क्षोभ से दूर।

मानवता का प्रेम-निकेतन,
आदि-सभ्यता का इतिहास।

मातृ-भाव, समता, क्षमता का,
तू है अवनी में अधिवास।
छिपा व्योम में लघु तारा-सा,
तू है अपने में ही लीन।
लोल-लोल लहरों से लोलित,
विश्व-वारिनिधि का है मीन। मछली

भोली चितवन से तू जग को,
सदा देखता है अविकार।
सबके लिए खुला रहता है,
सन्तत तेरे उर का द्वार।
दया, क्षमा, ममता आदिक हैं,
तेरे रत्नों के भांडार।
हैं निर्मल जल, शुद्ध वायु ही,
तेरे जीवन के उपहार।

छल से रहता दूर, किन्तु तू,
बल-पौरुष में है भरपूर।
तेरे जीवन-धन हैं जग में,
बस किसान एवम् मजदूर।
कोयल तुझे सुना जाती है,
मधुमय ऋतुपति का सन्देश।
खेतों में पौधे उग-उगकर,
देते हैं तुमको उपदेश।

जग को जगमग करनेवाले,
है तुझमें न प्रकाश महान्।
पर मिट्टी के ही दीपक से,
रहता है तू ज्योतिष्मान्।

सह सकता है कभी नहीं तू,
बाह्य जगत् की तीव्र बयार।
तुझे प्राण-सम प्रिय है हरदम,
निज भोला-भाला संसार।

काँटे चुभते ही रहते हैं,
उड़ती रहती तुझ पर धूल।
तो भी तू न मलिन होता है,
विश्व-वाटिका का मृदु फूल।

रखकर सबसे निपट निराला,
जगतीतल में निज व्यक्तित्व।
करता है तू सफल सर्वदा,
अपना छोटा-सा अस्तित्व॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) 'जग के भोलेपन का प्रतिनिधि' का क्या तात्पर्य है? (२) गाँव के जीवन-धन कौन हैं? उन्हें यह उपाधि क्यों दी गयी? (३) गाँव का अस्तित्व क्यों सफल कहा गया है? (४) 'काँटे चुभते ही रहते हैं, उड़ती रहती तुझ पर धूल'—का भाव विस्तारपूर्वक समझाओ।

अलंकार—'निपट निराला' में अनुप्रास अलंकार है। अनुप्रास अलंकार के तीन उदाहरण ढूँढ़कर निकालो।

विशेष—अपनी पाठशाला के पुस्तकालय से इस कवि का 'माधवी' संग्रह लेकर पढ़ो।

———

५. सारनाथ

प्रवेशक—सारनाथ बौद्धों का बहुत महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थान है। भगवान् बुद्ध ने सबसे पहले यहीं पर धर्मोपदेश किया था। खुदाई में मिली मौर्यकालीन अनेक वस्तुएँ हैं, जो उस काल की स्थापत्य-कला की उत्कृष्टता प्रकट करती हैं। सारनाथ का नवीन मन्दिर भी, जो 'मूल-गन्ध-कुटी-विहार' के नाम से प्रसिद्ध है, स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है।

बर्बरता ध्वन्सावशेष पुरातत्व शैली

सारनाथ काशी नगर से दो कोस उत्तर स्थित है। यह बौद्धों का बहुत बड़ा तीर्थस्थान है। बौद्ध धर्म का जन्म यहीं पर हुआ था। बुद्धत्व प्राप्त होने के बाद पहले-पहल गौतम ने यहीं पर धर्मोपदेश किया था। प्रत्येक वर्ष सिंहल, चीन, ब्रह्मा तथा जापान के बहुत से बौद्ध भिक्षु धर्म के इस केन्द्र को देखने आते हैं।

सारनाथ के नामकरण के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। भगवान् बुद्ध अपने पहले जन्म में यहीं पर मृगों के सरदार बन कर रहा करते थे। तत्कालीन काशिराज जब आखेट करते तब बहुत से मृग मार डाले जाते। मृग बुद्ध और काशिराज में यह सन्धि हुई कि प्रतिदिन एक मृग राज्य के भोजनालय में जाया करेगा। एक दिन एक गर्भिणी हरिणी की बारी आयी। मृगी ने कहा कि आज मेरे मारे जाने का दिन है। किन्तु मेरे गर्भ के बच्चे के मारे जाने का दिन नहीं है। सभी ने उसके तर्क को स्वीकार किया, किन्तु उसके स्थान पर राजा के पास जाने को कोई उद्यत न हुआ। यह देखकर मृग बुद्ध राजा के पास स्वयम् चले गये। काशिराज पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने मांस खाना छोड़ दिया। मृग बुद्ध का नाम सारंगनाथ था। उन्हीं के नाम पर उस स्थान का नाम सारंगनाथ पड़ा। सारंगनाथ से बिगड़कर सारनाथ हो गया। सारनाथ के निकटवर्ती एक तालाब का नाम भी सारंग तालाब है।

गौतम बुद्ध वर्ष में एक बार सारनाथ अवश्य आया करते थे। उनकी मृत्यु के बाद तो यह तीर्थ ही हो गया। किन्तु यहाँ की खुदाई में मौर्यकाल के पहले का कोई ऐतिहासिक चिह्न नहीं मिला। पहले भिक्षु लोग अति सरल ढंग से साधारण विहारों में रहते थे। अशोक के पूर्व बौद्ध धर्म की परिधि बहुत छोटी थी। बौद्ध धर्म के प्रचार का बहुत बड़ा श्रेय अशोक को ही है। उन्होंने गौतम बुद्ध के अवशेषों को समाधि में रखकर एक स्तूप बनवाया और उसी के समीप एक पाषाण-स्तम्भ का निर्माण कराया।

दिन पर दिन सारनाथ की उन्नति होती गयी। वहाँ पर नये-नये विहारों का निर्माण होता रहा। विक्रम की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ह्वेनसांग आया था। उसने लिखा है कि सारनाथ के विहार में १५०० भिक्षु रहते हैं। यहाँ भगवान् बुद्ध का एक बहुत विशाल मन्दिर है। इसमें बुद्ध की ताम्र-प्रतिमा रखी हुई है। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र की बौद्ध रानी कुमारदेवी ने भगवान् बुद्ध की स्मृति में एक नया मन्दिर बनवाया। इसी शताब्दी के अन्त में सारनाथ मुसलमान आक्रमण-कारियों की बर्बरता का शिकार हुआ और फिर यह ध्वंसावशेषों का ढेर मात्र रह गया।

लगभग ६०० वर्षों तक सारनाथ विस्मृति के गर्भ में विलुप्त रहा। संवत् १९५१ विक्रमी में यह फिर लोगों की दृष्टि में आया। इस समय इसके दृष्टि में आने की मनोरंजक कथा है। बनारस राज्य के दीवान जगतसिंह काशी में अपने नाम का एक मुहल्ला बसाना चाहते थे। आज का जगतगंज उन्हीं के नाम पर इस नाम से पुकारा जाता है। वे वहाँ के एक स्तूप की ईंटें उठवा ले आये। स्तूप गिरते समय उन्हें एक कास्केट मिला। इस कास्केट के आधार पर बनारस राज्य के तत्कालीन रेजिडेंट जोनाथन ने एक लेख लिखा और कहा कि यह कास्केट बौद्धों का होगा, अन्यथा यह गंगाजी

में प्रवाहित कर दिया गया होता। संवत् १९६१ में भारतीय पुरातत्त्व-विभाग की ओर से इसकी खुदाई हुई और बौद्ध धर्म के वैभवपूर्ण दिनों की बहुत-सी वस्तुएँ मिलीं, जो स्थानीय संग्रहालय में रखी हुई हैं।

खुदाई के स्थान से आध मील दक्षिण चौखण्डी स्तूप है। इस स्तूप के ऊपर बनाये गये स्मारक के नाम पर इसका नाम चौखण्डी स्तूप पड़ा। स्तूप के ऊपरी भाग को सम्राट अकबर ने अपने पिता के उस स्थान पर आने की स्मृति में बनवाया था। इस ऊपरी भाग से काशी का बड़ा ही रमणीक दृश्य दिखाई पड़ता है। इस स्तूप के भीतर एक कुआँ है। कनिंघम ने अस्थि पाने की आशा से इसे खुदवाया था, किन्तु कुछ प्राप्त नहीं हुआ। सम्भवतः यहीं बैठकर भगवान् बुद्ध ने अपने पाँचों शिष्यों को धर्म की ज्योति दी थी। उसी की स्मृति में इस स्तूप का निर्माण हुआ है।

खुदाई का भाग दर्शकों को आकर्षक नहीं प्रतीत होगा। इसका ऐतिहासिक महत्व है। बौद्ध विहारों को देखते हुए हम धर्मराजिक स्तूप के पास पहुँचते हैं। यहाँ पर अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप था। इसे मुसलमान आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया और बचे हुए भाग को जगतसिंह उठवा ले आये। इससे थोड़ा दूर पश्चिम अशोक का प्रसिद्ध स्तम्भ टूटा पड़ा है। उसकी चिकनाहट प्रकृति से युद्ध करती हुई अब तक चमचमा रही है। ह्वेनसांग के समय में यह स्तूप दर्पण की भाँति चमक रहा था। इसका सिंहांकित शीर्ष संग्रहालय में रख दिया गया है। आजकल यही भारत का राजचिह्न है। इसके अनन्तर प्राचीन बौद्ध मन्दिरों के टूटे प्राचीर दिखाई पड़ेंगे। इसकी ओर बढ़ने पर हम कुमारदेवी द्वारा बनवाये गये बौद्ध मन्दिर के स्थान पर आ जाते हैं।

भाग्यवश धमेख स्तूप ध्वंस से बच गया है। धमेख का नाम धर्मेक्ष था, जिसका अर्थ होता है धर्म को देखना, उसकी रक्षा करना। यह १४३ फुट ऊँचा है।

मूलगन्धकुटी विहार आज के सारनाथ का सबसे महत्वपूर्ण मन्दिर है। महाबोधि सोसायटी ने सं० १९७९ में इसे बनवाना आरम्भ किया था। नौ वर्षों के बाद यह बनकर तैयार हुआ। इसके बनवाने में डेढ़ लाख रुपया व्यय हुआ, केवल भित्ति-चित्रों में उनहत्तर हजार लागत लगी है। मन्दिर में गौतम बुद्ध की वराभय मुद्रा में बैठी हुई एक मूर्ति है। मूर्ति के नीचे विभिन्न स्थानों से प्राप्त बुद्ध की अस्थियाँ रखी हैं। जापान के प्रसिद्ध चित्रकार कोसेत्सु नेसू ने पाँच वर्ष के अनवरत परिश्रम के उपरान्त भित्ति-चित्रों का निर्माण किया। ये चित्र अजन्ता-शैली पर बनाये गये हैं। इन चित्रों द्वारा बुद्ध के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ प्रदर्शित की गयी हैं।

नया चीनी बौद्ध मन्दिर अपनी सादगी में भी भव्य है। इसके सामने महाबोधि हाईस्कूल है जो महाबोधि सोसायटी द्वारा संचालित है। पाली और बुद्धधर्म-सम्बन्धी पुस्तकों का यहाँ बड़ा सुन्दर संग्रह है। यह ऐसी संस्था है जो बौद्ध भिक्षुओं को भारतीय दर्शन तथा पाली, संस्कृत, सिंहली, बर्मी भाषाओं की शिक्षा देती है। यहाँ से 'धर्मदूत' नामक मासिक पत्र निकलता है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) सारनाथ के नाम के सम्बन्ध में कौन-सी कथा प्रसिद्ध है? (२) सारनाथ में बौद्ध विहार होने का अनुमान कैसे लगा? (३) चौखंडी स्तूप का निर्माण क्यों हुआ? (४) मूलगन्धकुटी विहार के सम्बन्ध में क्या जानते हो?

लेखनार्थ—(१) काशी, प्रयाग और हरिद्वार में से किसी एक का वर्णन करो। (२) निम्नलिखित शब्दों का अभिप्राय विस्तार से समझाओ—कास्केट, संग्रहालय, पुरातत्व-विभाग, स्तूप।

व्याकरण—'खुदाई' शब्द किस क्रिया से बना है? ऐसे शब्द को व्याकरण में क्या कहते हैं? आना, ढलना और घूमना क्रिया से ऐसे ही रूप बनाओ और उनका वाक्यों में प्रयोग भी करो।

———

६. रहीम के दोहे

(परिचय—इन दोहों के कर्त्ता अकबर के प्रसिद्ध दरबारी अब्दुर्रहीम खानखाना हैं। ये नीति के चुटीले दोहे, सोरठे लिखने में सिद्धहस्त थे। इन्होंने कई भाषाओं के मेल से भी मनोरंजनकारी रचनाएँ की हैं। ये नीति की रचना करनेवाले साधारण कवियों से भिन्न हैं। इनकी कविता में अधिकतर मर्म को छूनेवाली बातें रहती हैं।)

सलिल मीन दादुर सरवरि
मही गीत मराल सरवर

अमृत ऐसे बचन में 'रहिमन' रिस को गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली निरस बाँस की फाँस ॥ १ ॥

काकी महिमा नहिं घटी पर-घर गए रहीम।
खाय समानी उदधि में गंग नाम भयौ धीम ॥ २ ॥

कागद को सो पूतरा सहजहिं में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खैंचत बाय ॥ ३ ॥

को रहीम पर-द्वार पै जात न जिय सकुचाय।
संपति के सब जात हैं बिपति सबै लै जाय ॥ ४ ॥

गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है मन काहू को बाढ़ि ॥ ५ ॥

जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाँड़ति छोह ॥ ६ ॥

जो बड़ेन को लघु कहौ नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहैं कछु दुःख मानत नाहिं ॥ ७ ॥

जौ रहीम मन हाथ है तौ तन कहुँ किन जाहिं।
ज्यों जल में छाया परै काया भीजत नाहिं ॥ ८ ॥

तनु रहीम है करमबस मन राखौ वहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों खैंचत गुन के जोर ॥ ९ ॥
दादुर मोर किसान मन लग्यौ रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक-रटनि सरवरि को कोउ नाहिं ॥ १० ॥
धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय ॥ ११ ॥
मथत मथत माखन रहै दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय ॥ १२ ॥
रहिमन जाचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयौ बावन आँगुर गात ॥ १३ ॥
रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय ॥ १४ ॥
रहिमन रहिला की भली जो परसै मन लाय।
परसत मन मैला करे वा मैदा जरि जाय ॥ १५ ॥
रहिमन राज सराहिये ससि-सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु जो तप्यौ तरैयन खोय ॥ १६ ॥
सरवर के खग एक से बाढ़त प्रीत न धीम।
पै मराल को मानसर एकै ठौर रहीम ॥ १७ ॥
ससि की सीतल चाँदनी सुन्दर सबहिं सोहाय।
लगै चोर चित को लटी घटि रहीम मन आय ॥ १८ ॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) 'मुरलीधर' नाम 'गिरधर' नाम से घटकर क्यों कहा गया ? (२) चातक की रट सबसे उत्तम क्यों कही गयी है ? (३) समुद्र का पानी पीने योग्य क्यों नहीं है ? (४) मराल मानसरोवर में ही क्यों रहते हैं ? (५) इन शब्दों के तत्सम रूप बतलाओ—आय, संपति, छोह, मोर, मीत ।

लेखनार्थ—'नारायन हू को भयो बावन आँगुर गात' में जो कथा हो उसे संक्षेप में लिखो।

छन्द-अलंकार—(१) 'गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप ते काढ़ि'—'गुन' के कितने अर्थ लिए गये हैं? (२) जहाँ शब्द के एक से अधिक अर्थ लिये जाते हैं वहाँ कौन-सा अलंकार होता है? (३) 'दोहा' का लक्षण बतलाओ। इसका उल्टा करके लिखें तो कौन-सा छन्द बन जायगा?

---

७. दाँत

(परिचय—इसके लेखक पं० प्रतापनारायण मिश्र बड़े मनमौजी लेखक थे। छोटी-छोटी साधारण वस्तुओं पर बड़े मनोरंजक और विनोद-पूर्ण ढंग से लिखना इनकी अपनी विशेषता है। भाषा में चुलबुलापन और बोलचाल की चपलता सर्वत्र मिलेगी। ये भारतेन्दु-काल के एक विशिष्ट लेखक थे।)

दैन्य पद्धतिकार दन्त-कथा

इस दो अक्षर के शब्द तथा इन थोड़ी-सी छोटी-छोटी हड्डियों में भी उस चतुर कारीगर ने वह कौशल दिखलाया है कि किसके मुँह में दाँत हैं जो पूरा पूरा वर्णन कर सके। मुख की सारी शोभा और यावत् भोज्य पदार्थों का स्वाद इन्हीं पर निर्भर है। कवियों ने अलक (जुल्फ), भ्रू (भौं) तथा वरुणी आदि की छवि लिखने में बहुत रीति से बाल की खाल निकाली है; सच पूछिए तो इन्हीं की शोभा से उनकी शोभा है। जब दाँतों के बिना पुपला-सा मुँह निकल आता है, और चिबुक (ठोढ़ी) एवं नासिका एक में मिल जाती है, उस समय सारी सुघराई मिट्टी में मिल जाती है। कवियों ने इनकी उपमा, हीरा, मोती, माणिक

से दी है, वह बहुत ठीक है, रंच ये अवयव कथित वस्तुओं से अधिक मोल के हैं। यह वह अंग है जिसमें पाकशास्त्र के छहों रस एवं काव्यशास्त्र के नवों रसों का आधार है। खाने का मजा इन्हीं से है। इस बात का अनुभव यदि आपको न हो, तो किसी बुड्ढे से पूछ देखिए, सिवाय सतुआ चाटने के और रोटी के दूध में तथा दाल में भिगो के गले के नीचे उतार देने के दुनिया भर की चीजों के लिए तरस ही के रह जाना होगा। रहे कविता के नौ रस सो उनका दिग्दर्शन मात्र सुन लीजिए।

शृङ्गार का तो कहना ही क्या है! ऐसा कवि शायद ही कोई हो जिसने दन्तावली के वर्णन में अपनी कलम की कारीगरी न दिखाई हो। अहा हा! मिस्सी तथा पान-रंग-रँगे अथवा यों ही चमकदार चटकीले दाँत जिस समय बात करने तथा हँसने में दृष्टि आते हैं, उस समय नयन और मन इतने प्रमुदित हो जाते हैं कि जिनका वर्णन गूँगे की मिठाई है। हास्य-रस का तो पूर्ण रूप ही नहीं जमता, जब तक हँसते-हँसते दाँत न निकल पड़ें। करुण और रौद्र रस में दुःख तथा क्रोध के मारे दाँत अपने होंठ चबाने के काम आते हैं, एवम् अपनी दीनता दिखा के दूसरे में करुणा उपजाने में दाँत दिखाये जाते हैं। रिस में भी दाँत पीसे जाते हैं। सब प्रकार के वीर रस में भी सावधानी से शत्रु के सैन्य अथवा दुखियों के दैन्य अथवा सत्कीर्ति की चाट पर दाँत लगा रहता है। भयानक रस के लिए सिंह व्याघ्रादि के दाँतों का ध्यान कर लीजिए, पर रात को नहीं, नहीं तो सोते से चौंक भागोगे। वीभत्स रस का प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो किसी जैनी महाराज के दाँत देख लीजिए, जिनकी छोटी-सी स्तुति यह है कि मैल के मारे पैसा चिपक जाता है! अद्भुत रस में तो सभी आश्चर्य की बात देख-सुन के दाँत बाय, मुँह फैलाय के रह जाते हैं।

पद्धतिकारों ने 'दीर्घदन्ताः क्वचिन्मूर्खाः' आदि क्यों लिखा। किस-किस जानवर के दाँत किस-किस प्रयोजन से, किस-किस रूपगुण से विशिष्ट बनाये गये हैं? मनुष्यों के दाँत उजले, पीले, नीले, छोटे,

मोटे, लम्बे, चौड़े, घने, खुड़हे, कै रीति के होते हैं ? इत्यादि अनेक बातें हैं जिनका विचार करने में बड़ा विस्तार चाहिये। वरंच यह भी कहना ठीक है कि ये बड़ी-बड़ी विद्याओं के बड़े-बड़े विषय लोहे के चने हैं, हर किसी के दाँतों फूटने के नहीं। तिस पर भी अकेला आदमी क्या-क्या लिखे ?

अतः हम इस दन्त-कथा को केवल इतने उपदेश पर समाप्त करते हैं कि आज हमारे देश के दिन गिरे हुए हैं, अतः हमें योग्य है कि जैसे बत्तीस दाँतों के बीच जीभ रहती है, वैसे रहें और अपने देश की भलाई के लिये किसी के आगे दाँतों में तिनका दबाने तक में लज्जित न हों तथा यह भी ध्यान रखें कि हर दुनियादार की बातें विश्वास-योग्य नहीं हैं। हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, दिखाने के और।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) मुख की सारी शोभा और भोजन का सारा स्वाद क्यों दाँतों पर ही निर्भर है ? (२) शृङ्गार, हास्य तथा वीभत्स रस के लिये दाँतों से क्या सहायता मिलती है ?

लेखनार्थ—(१) 'दीर्घदन्ताः क्वचिन्मूर्खाः' का क्या अर्थ है ? (२) निम्नलिखित शब्दों और मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग करो—दन्त-कथा, मुख में दाँत होना, गूँगे की मिठाई, बाल की खाल निकालना। (३) दाँत के चार ऐसे मुहावरे बताओ जो इसमें न आये हों। (४) दाँत की तरह आँख की उपयोगिता पर छोटा-सा लेख लिखो।

व्याकरण—निम्नलिखित शब्दों का समास बतलाओ—

काव्य-शास्त्र, नवरस, दीर्घदन्त, बड़ी-बड़ी।

---

८. रण-निमन्त्रण

(परिचय—आधुनिक कवियों में बाबू मैथिलीशरण गुप्त सबसे लोकप्रिय हैं। आपको राष्ट्रकवि भी कहा जाता है, क्योंकि आपकी रचनाओं में राष्ट्र के सुख-दुःख, आशा-आकांक्षा का बड़ा चटकीला वर्णन हुआ है। खड़ी बोली को माँजकर आज की कविता के अनुरूप बनाने का सबसे अधिक श्रेय गुप्तजी को है। भारत-भारती, पंचवटी, साकेत, यशोधरा आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।)

प्रवेशक—महाभारत युद्ध के पूर्व दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण को अपने-अपने पक्ष में करने के लिए एक साथ द्वारका पहुँचे। किस परिस्थिति और कुशलता के कारण अर्जुन श्रीकृष्ण को अपनी ओर कर सके इसका बड़ा रोचक वर्णन इसमें किया गया है।

प्रत्यूष पाटम्बर साहाय्य

कौरव तथा पांडव परस्पर विजय की आशा किये,
होने लगे जब प्रकट प्रस्तुत युद्ध करने के लिये।
उस समय निज-निज पक्ष के राजा बुलाने को वहाँ,
भेजे गये युग पक्ष से ही दक्ष दूत जहाँ-तहाँ।
फिर शीघ्र ही श्रीकृष्ण को निज ओर करने युद्ध में,
देने उन्हें रण का निमन्त्रण निज विपक्ष-विरुद्ध में।
लेने तथा साहाय्य उनसे और सर्व-प्रकार का,
दैवात् दुर्योधन और अर्जुन संग पहुँचे द्वारका॥
उस समय सुन्दर सेज ऊपर सो रहे भगवान थे,
गम्भीर नीरव शान्त सुस्थिर सिन्धु सम छविमान् थे,
ओढ़े मनोहर पीत पट अति भव्य रूपनिधान थे,
प्रत्यूष-आतप-सहित शुचि यमुना-सलिल-उपमान थे॥
था शयन-पाटाम्बर अरुण, झालर लगी जिसमें हरी,
उस पर तनिक तिरछे पड़े थे पीत पट ओढ़े हरी।
वह दिव्य शोभा देख करके ज्ञात होता था यही—
मानो पुरन्दर-चाप सुन्दर कर रहा शोभित मही॥

ऐसे समय में शीघ्रता से पहुँच दुर्योधन वहाँ,
श्रीकृष्ण के सिर ओर बैठा रुचिर आसन था जहाँ।
कुछ देर पीछे फिर वहाँ आकर बिना ही कुछ कहे,
हरि के पदों की ओर अर्जुन नम्रता से स्थिर रहे ॥

कुछ देर में जब भक्तवत्सल देवकीनन्दन जगे,
तब देख अर्जुन को प्रथम बोले वचन प्रियता-पगे।
"है कुशल तो सब भाँति भारत ! आज भूल पड़े कहाँ,
जो कार्य मेरे योग्य हो प्रस्तुत सदा मैं हूँ यहाँ ॥

"होते सुलभ सुख-भोग जिससे भागते भव रोग हैं,
सो कृपा जिन पर आपकी सकुशल सदा हम लोग हैं।
सम्प्रति समर-साहाय्य-हितकर विनय, सुख पाकर महा,
मैं हुआ देने रण-निमन्त्रण, प्राप्त सेवा में यहाँ ॥"

कर्तव्य ही कुरुनाथ अपना सोचता जब तक रहा,
कर लिया तब तक पार्थ ने यों कार्य निज, ऊपर कहा।
यह शीघ्र घटना देखकर अति चकित-सा वह रह गया,
सब गर्व उसका उस समय नैराश्य-नद में बह गया ॥

धिक्कार तब देता हुआ वह प्रथम आने के लिये,
मन के विकारों को किसी विध रोककर अपने हिये।
श्रीकृष्ण से मिलकर तथा पाकर उचित सत्कार को,
कहने लगा इस भाँति उनसे त्याग सोच-विचार को ॥

"आया प्रथम गोविन्द ! हूँ मैं आपके शुभ धाम में,
अतएव मुझको दीजिये साहाय्य इस संग्राम में।
मैं और अर्जुन आपको दोनों सदैव समान हैं,
पर प्रथम आये को अधिकतर मानते मतिमान हैं ॥"

श्रीकृष्ण बोले—"कहे तुमने उचित वचन विवेक से,
तुम और पांडव हैं हमें दोनों सदा ही एक से।

तब प्रथम आने के वचन भी सब प्रकार यथार्थ हैं,
पर प्रथम दृग्गोचर हुए मुझको यहाँ पर पार्थ हैं ॥
जो हो, करूँगा युद्ध में साहाय्य दोनों ओर मैं,
पालन करूँगा यह किसी विध आत्मकर्म कठोर मैं।
दश कोटि निज सेना करूँगा एक ओर सशस्त्र मैं,
केवल अकेला ही रहूँगा एक ओर निरस्त्र मैं ॥"
सुनकर वचन यों पार्थ ने स्वीकार श्रीहरि को किया,
कुरुनाथ ने नारायणी दश कोटि सेना को लिया।
तब पार्थ से हँसकर वचन कहने लगे भगवान् यों—
"स्वीकृत मुझे तुमने किया है त्याग सैन्य महान् क्यों ?"
गम्भीर होकर पार्थ ने तब यह उचित उत्तर दिया—
"था चाहिए करना मुझे जो; है वही मैंने किया।
है सैन्य क्या, मुझको जगत् भी तुम विना स्वीकृत नहीं,
श्रीकृष्ण रहते हैं जहाँ सब सिद्धियाँ रहती वहीं ॥"

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण के पास द्वारका क्यों गये ? (२) श्रीकृष्ण की दृष्टि पहले अर्जुन पर क्यों पड़ी ? (३) जब अर्जुन श्रीकृष्ण का उत्तर दे चुके तब दुर्योधन ने उनसे क्या कहा ? (४) श्रीकृष्ण दोनों पक्षों की सहायता कैसे कर सकते थे ? (५) अर्जुन ने अपने पक्ष के लिये श्रीकृष्ण को क्यों चुना ? (६) "वह दिव्य शोभा देख करके ज्ञात होता था यही। मानो पुरन्दर-चाप सुन्दर कर रहा शोभित मही।"—का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट करो। इसमें कौन अलंकार हैं ?

छन्द—इस कविता में किस छन्द का प्रयोग किया गया है ?

विशेष—इस पाठ में तुम्हें कौन पद्य सबसे अच्छा लगता है ? कारण सहित लिखो।

९. ग्राम-पंचायत

प्रवेशक—ग्राम पंचायत हमारे देश में बहुत पुरानी है। बापू के रामराज्य की नींव ग्राम-पंचायतों पर ही टिकी है। हमारे प्रान्त की सरकार ने उसी पुरानी संस्था का नये ढंग से पुनरुद्धार किया है। गाँव की भावी उन्नति में ग्राम-पंचायतें बहुत योग देंगी।

निर्वाचित वाचनालय कार्यवाही वादी

राजीव—ग्राम-पंचायत कोई नयी चीज है, दादा? आप लोग भी तो पंचायत किया करते थे। बड़े-बड़े पग्गड़ बाँधकर चौधरी आया करते थे।

दादा—यह कोई नयी बात नहीं है, बेटा। हमारे देश में प्राचीन काल में गाँवों का शासन पंचायतें ही किया करती थीं। देश पर यवनों, हूणों, शकों आदि अनेक जातियों के आक्रमण हुए किन्तु ग्राम-पंचायत उनसे प्रभावित नहीं हुई। उन्हीं के कारण गाँवों में धन-धान्य की कभी कमी नहीं हुई।

राजीव—आज तो गाँवों की स्थिति बहुत शोचनीय हो गयी है। घी-दूध तो देखने को नहीं मिलता। अपने ही गाँव में देखिए, जमींदार रामनारायण को छोड़कर किसी के पास भैंस की कौन कहे गाय तक नहीं। जब गाँव-पंचायतें थीं ही, तो हमारे गाँवों की यह दशा कैसे हुई?

दादा—अँगरेज शासकों ने हमारी इन संस्थाओं का नाश कर दिया। उत्तर प्रदेश की सरकार ने कानून बनाकर प्रान्त भर में पुरानी पंचायतों का पुनरुद्धार किया है। अब गाँव का प्रबन्ध गाँव के लोग ही करेंगे।

राजीव—गाँव भर के लोग एक जगह बैठकर पंचायत करेंगे, दादा?

दादा—नहीं बेटा, इसके लिए चुनाव होगा। जो लोग निर्वाचित कर लिये जायँगे वे गाँव-पंचायत के सदस्य होंगे।

राजीव—इन सदस्यों को कौन चुनेगा ? यह चुनाव कैसे होगा ?

दादा—गाँव का प्रत्येक बालिग गाँव-सभा का सदस्य होगा। इस गाँव-सभा के अन्तर्गत एक गाँव-पंचायत होगी। गाँव-पंचायतों के सदस्यों की संख्या ३० से ५१ तक होगी। इन सदस्यों का चुनाव गाँव-सभा करेगी।

राजीव—कालू अपना मत किसको देगा ? यदि किसी को दे तो क्या उसका कोई मूल्य होगा, दादा ?

दादा—कालू पागल है। उसे मत देने का अधिकार नहीं है। कोढ़ी, दिवालिया, आनरेरी मजिस्ट्रेट, आनरेरी मुंसिफ, चुनाव सम्बन्धी अपराधी तथा नैतिक अपराध में दंड पाये हुए लोगों को मत देने का अधिकार नहीं है।

राजीव—गाँव पंचायत का काम क्या होगा ?

दादा—गाँव की भलाई के लिए गाँव-पंचायत कुछ भी कर सकती है। अपनी अधिकार-सीमा में मार्ग-निर्माण, रोशनी, चिकित्सा, सफाई आदि के प्रबन्ध का उसे पूरा अधिकार है। पुस्तकालय तथा वाचनालय की स्थापना करना, अखाड़ा खोलना, मनोविनोद का कोई शुभ-साधन प्रस्तुत करना—उसके अधिकार के भीतर है। उसे जन्म-मृत्यु तथा विवाह के रजिस्टर भी रखने होंगे। सार्वजनिक स्थानों की रक्षा का पूरा भार ग्राम-पंचायत पर रहेगा। गाँव से सम्बद्ध सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायत भेजने पर सही शिकायतों पर कार्यवाही की जायगी।

राजीव—इन दुनिया भर के कामों के लिए रुपया कहाँ से आयेगा दादा ?

दादा—अदालतों द्वारा प्राप्त रुपये, दंड की रकम, सरकारी सहायता गाँव-पंचायतों की आय के साधन हैं। जमींदारी टूट जाने पर गाँव की परती जमीन, तालाब आदि पर पंचायत का अधिकार हो

जायगा। इस तरह उसकी आय भी बढ़ जायगी। गाँव की जायदाद और पशुओं के क्रय-विक्रय पर गाँव-पंचायत कर लगा सकती है।

राजीव—यही गाँव-पंचायत झगड़ों का भी निपटारा करेगी, मुकदमों का निर्णय भी करेगी ?

दादा—नहीं, पंचायती अदालतें दूसरी होंगी। प्रान्तीय सरकार प्रत्येक जिले को इतने भागों में बाँट देगी, जितने भागों में बाँटने से कार्य सुगमतापूर्वक चल सके। प्रत्येक भाग में एक ग्राम-अदालत होगी।

राजीव—दादा, इन अदालतों के पंचों का चुनाव कैसे होगा ?

दादा—अदालती पंचायतों के क्षेत्र की प्रत्येक गाँव-सभा, पाँच अदालती पंच निर्वाचित करेगी। अदालती पंच अपने में से एक सरपंच चुन लेंगे। प्रत्येक मुकदमे की सुनवाई के लिए सरपंच पाँच सदस्यों की एक समिति बना देगा। समिति बनाते समय सरपंच को इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि एक पंच वादी के गाँव का निवासी हो और दूसरा पंच प्रतिवादी के गाँव का रहने वाला हो। शेष तीन पंच दूसरे गाँव के निवासी होंगे।

राजीव—वकील, मुख्तार इस अदालत में बहस करेंगे ?

दादा—नहीं बेटा, यहाँ पर उनकी कोई आवश्यकता नहीं। इस अदालत में तो वास्तविकता के आधार पर न्याय होगा, बहस के चोचलों के आधार पर नहीं। पंचायती अदालत के निर्णय के विरुद्ध अपील भी न हो सकेगी।

राजीव—गाँव-पंचायत की उपयोगिता तो समझ में आ गई किन्तु ग्राम-अदालत का लाभ समझ में नहीं आया।

दादा—इस अदालत से सस्ता, शीघ्र और शुद्ध न्याय प्राप्त हो सकेगा। जिले की अदालतों में गरीब जनता का रुपया पानी की तरह बह जाता है; न्याय का नाटक देखते कई वर्ष बीत जाते हैं, फिर भी शुद्ध न्याय नहीं हो पाता। सारी बातें गाँवों के पंचों की जानी सुनी रहती हैं। अतः वे सच्चा न्याय कर सकते हैं।

राजीव—दादा तो हम लोगों को भी दूध-दही, घी खाने को खूब मिलेगा, गांव में दरिद्रता न रहेगी। तब तो गांव का भविष्य बड़ा उज्ज्वल दिखाई देता है।

दादा—हाँ बेटा, वही राम-राज्य आने वाला है जिसके बारे में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज काहू नहिं व्यापा॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) गांवों की दशा इतनी शोचनीय क्यों हो गयी? (२) ग्राम-पंचायत के सदस्यों को मत देने का अधिकार किनको होगा? (३) कौन-कौन मत नहीं दे सकते? (४) ग्राम-पंचायत और ग्राम-अदालत के क्या-क्या कार्य हैं? (५) 'न्याय का नाटक' का क्या अभिप्राय है? (६) वादी-प्रतिवादी, अधिकार-अधिकारी और साधन-साध्य के अर्थ का अन्तर स्पष्ट करो।

व्याकरण - निम्नलिखित शब्दों का संधि-विग्रह करो—
प्रत्येक, पुस्तकालय, पुनरुद्धार, उज्ज्वल।

—:*:—

१०. हरिश्चन्द्र की कफन-खसोटी

(परिचय—बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' 'ब्रजभाषा' के अन्तिम महान् कवि हो गए हैं। ब्रजभाषा का इतना बड़ा पंडित इस युग में कोई दूसरा नहीं हुआ। ब्रजभाषा के महान् कवियों—घनानन्द, रसखानि और मतिराम की-सी टकसाली भाषा और भाव-सौंदर्य के दर्शन रत्नाकरजी की कविताओं में कर सकते हैं। इनकी समस्त कविताओं का संग्रह 'रत्नाकर' नाम से दो भागों में प्रकाशित हो चुका है।)

प्रवेशक—सत्य की रक्षा में हरिश्चन्द्र ने अपने को तथा अपनी पत्नी को बेच दिया था। वे काशी के श्मशान-घाट पर अपने स्वामी

डोम-सरदार की आज्ञा से मृतक-क्रिया करनेवालों से आधा कफन लिया करते थे। प्रस्तुत पाठ में वे अपने पुत्र रोहित के शव-दाह के लिए घाट पर आयी अपनी पत्नी से कफन माँग रहे हैं। बड़ा करुण दृश्य है।

चक्रवर्ती ललाम परमावधि महिषी

तब नृप बरबस रोकि आँसु, औहैं बढ़ि आए।
थाम्हि करेजौ धारि धीर ये शब्द सुनाए॥
"है मसानपति की आज्ञा कोउ मृतक फुकै ना।
जब लौं फूँकन-हार कफन आधा कर दै ना॥
यातैं देवी देहु तुमहुँ कर, क्रिया करौ तब"।
भरयौ गगन यह शब्द भूप इमि टेरि कह्यौ जब॥
"धन्य धैर्य बल सत्य दान सब लखत तिहारे।
अहो भूप हरिचन्द सकल लोकनि तैं न्यारे"॥
यह सुनि सैब्या भई चकित बोली इत उत ज्वै।
"आर्यपुत्र की करत प्रसंसा कौन हितू है॥
पै इहि वृथा प्रसंसा हूँ सौं होत कहा फल।
जानि परत सब सास्त्र आदि अब तौ मिथ्या छल॥
निसन्देह सुर सकल महीसुर स्वारथरत अति।
नातरु ऐसे धर्मी की कैसे ऐसी गति"॥
यह सुनि स्रवननि धारि हाथ भूपति तिहिं टोक्यौ।
"हरे हरे, यह कहत कहा तुम"—यौं कहि रोक्यौ॥
"सूर्य-वंस की वधू चन्द्र-कुल की है कन्या।
मुख सौं काढ़त हाय कहा यह वात अधन्या॥
वेद ब्रह्म ब्राह्मन सुर सकल सत्य जिय जानौ।
दोष आपने कर्मंहि को निहचय करि मानौ॥
मुख सौं ऐसी बात भूलि फिरि नाहिं निकारौ।
होत बिलँब, दै हमें कफन करि क्रिया पधारौ"॥

सुनि यह अति दृढ़ बचन महिषि निज नाथहिं जान्यौ ।
कछु सुभाव कछु स्वर कछु आकृति सौं पहिचान्यौ ॥
परी पाँय पर धाइ; फूटि पुनि रोवन लागी ।
औरहु भई अधीर अधिक आरति जिय जागी ॥

कह्यौ हुचकि—"हा नाथ ! हमैं ऐसे बिसरायौ ।
कहाँ हुते अब लौं कबहूँ नहिं बदन दिखायौ ॥
हाय आपने प्रिय सुत की यह दसा निहारौ ।
लूटि गई हम हाय करहिं अब कहा उचारौ ॥

सुनि भूपति गहि सीस उठाइ बिबिध समुझायौ ।
"प्रिये, न छाँड़ौ धैर्य लखौ जो दैव लखायौ ॥
अब बिलम्ब कौ समय नाहिं चेतौ मत रोवौ ।
भोर होन ही चहत उठौ अवसर जनि खोवौ ॥
कोउ इत-उत तैं आनि कहूँ पहिचानि जु लैहै ।
इक लज्जा बचि रही अहै सोऊ चलि जैहै ॥
चलौ हमें दै कफन क्रिया करि भौन सिधारौ ।
सुनौ बीरपत्नी ह्वै धीरज नाहिं बिसारौ" ॥
यह सुनि सैब्या कह्यौ बिलखि अतिसय मन माहीं ।
"नाथ, हमारे पास हुतौ बस्तर कोउ नाहीं ॥
अंचल फारि लपेटि मृतक फूँकन ल्याई हौं ।
हा हा ! एती दूर बिना चादर आई हौं ॥
दीन्हें कफनहिं फारि लखहु सब अंग खुलत है ।
हाय ! चक्रवर्ती कौ सुत बिन कफन फुँकत है" ॥
कह्यौ भूप—'हम करहि कहा हैं दास पराए ।
फूँकन दै नहि सकत मृतक बिन कर चुकवाए ॥
ऐसे ही अवसर मैं पालन धर्म काम है ।
महा बिपति मैं रहै धैर्य सोई ललाम है ॥

बेचि देह हूँ जिहि सत्यहिं राख्यौ, मन ल्याऔ।
एक टूक कपड़े पर तेहि जनि आज छुड़ाऔ॥
फारि कफन मैं अर्ध बसन कर वेगि चुकाऔ।
देखौ चाहत भयौ भोर जनि देर लगाऔ"॥
सुनि महिषी बिलखाइ कफन फारन उर ठायौ।
ज्यौं ही उत 'जो आज्ञा' कहि हाथ बढ़ायौ॥
त्यौं ही एकाएक लगी कांपन महि सारी।
भयौ महा इक घोर शब्द अति बिस्मयकारी॥
बाजे परे अनेक एक ही बेर सुनाईं।
बरसन लागे सुमन चहूँ दिश जय-धुनि छाईं॥
फैलि गई चहुँओर बिज्जु कैसी उँजियारी।
गहि लीन्ह्यौ कर आनि अचानक हरि असुरारी॥
लगे कहन दृग वारि ढारि—'बस, महाराज बस।
सत्य धर्म की परमावधि है गई आज बस॥
पुनि पुनि काँपति धरा पुन्य-भय लखहु तिहारे।
अब रच्छहु तिहुँ लोक मानि मन बचन हमारे"॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) इस पाठ का शीर्षक 'कफन-खसोटी' क्यों रखा गया है? (२) शैव्या ने देवताओं को स्वार्थी क्यों कहा? उसका ऐसा कहना क्यों अनुचित था? (३) हरिश्चन्द्र शैव्या से इस विपत्ति की घड़ी में भी कफन क्यों मांगने लगे? (४) सत्य-परीक्षा का परिणाम क्या हुआ?

लेखनार्थ—(१) 'हाय! चक्रवर्ती कौ सुत बिन कफन फुँकत है' का तात्पर्य समझाओ। (२) सत्य हरिश्चन्द्र की कथा संक्षेप में लिखो। (३) इस कविता में किस छन्द का प्रयोग किया गया है?

आदेश—अपने यहां के पुस्तकालय से रत्नाकर जी की लिखी हुई 'हरिश्चन्द्र' कविता-पुस्तक लेकर पढ़ो।

---

११. खजुराहो के मन्दिर

(परिचय—इसके लेखक श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी हिन्दी के परम प्रेमी और शुभचिन्तक हैं। वे गद्य-लेखक ही नहीं, अच्छे कवि भी हैं। "जीवन के गीत", "रत्नदीप" आदि उनके कविता-संग्रह हैं। विविध विषयों पर आपने पुस्तकें लिखी हैं।)

प्रवेशक—खजुराहो के मन्दिरों की कला सारे विश्व में प्रसिद्ध है। यह भारत की प्राचीन कला का उत्कृष्ट नमूना है।

अलंकृत	शृंगमाला	गर्भगृह
पंचायतन	प्रदक्षिणा	गन्धर्व

खजुराहो के मन्दिर अपने सौन्दर्य और शिल्पकला के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। यह स्थान छतरपुर राज्य में है। हमीरपुर जिले में जी० आई० पी० रेलवे पर महोबा स्टेशन है। यह वही स्थान है जहाँ के आल्हा-ऊदल की कथा हमारे गाँवों में लोग बड़े चाव और उत्साह से गाया करते हैं। यहाँ से पक्की सड़क छतरपुर तक गयी है, जो प्रायः तीस मील है। छतरपुर से एक सड़क पन्ना चली गयी है। उसी सड़क पर दो-तीन मील पर खजुराहो स्थित है।

आज तो खजुराहो केवल एक छोटा-सा गाँव रह गया है, किन्तु, किसी समय बुन्देलखण्ड की राजधानी थी। उस समय बुन्देलखण्ड को जेजाकभुक्ति या जुझावती कहते थे, और यहाँ चन्देल राजे राज्य करते थे। कालिंजर का प्रसिद्ध दुर्ग इसी प्रान्त में था। पश्चिम में कालिंजर या पन्ना जानेवाली सड़क पर खजुराहो पड़ता था। कहा जाता है कि यह नगर बहुत बड़ा था। आज भी इसके खंडहर आठ मील के घेरे में फैले हुए हैं। किंवदन्ती है कि इसके मुख्य नगरद्वार पर दो सुनहरे खजूर के पेड़ थे। इसीसे इसका नाम खजुराहो पड़ा। कदाचित उन दिनों यहाँ खजूर के पेड़ों की बहुतायत थी। यही कारण इसके

वर्तमान नाम पड़ने का ज्ञात होता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि चन्द ने अपने पृथ्वीराज रासो में इस नगर का नाम खजूरपुर और कहीं-कहीं खंजिनपुर लिखा है।

जनश्रुति है कि खजुराहो में पचासी मन्दिर थे। उनमें से अब केवल बीस मन्दिर रह गये हैं। किन्तु ये मन्दिर भारतीय शिल्पकला के अद्वितीय नमूने हैं। इनके देखने से ज्ञात होता है कि हमारे देश में भवन-निर्माण और शिल्प-कला ने कितनी उन्नति कर ली थी। बचे हुए मन्दिरों में जोगिनी, लालगुआन महादेव, कँडरिया महादेव, सहदेव, जगदम्बा देवी, चित्रगुप्त या भरतजी, विश्वनाथजी, नन्दी, पार्वतीजी, लक्ष्मणजी, मातंगेश्वर और वाराहजी के मन्दिर मुख्य हैं।

खजुराहो में कँडरिया महादेव का मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है। यह ऊँचे विशाल चबूतरे पर बना है। यह पंचायतन के ढंग का था अर्थात् चबूतरे के बीच में मुख्य मन्दिर, चबूतरे के चारों कोनों पर चार छोटे-छोटे मन्दिर थे। कोने के मन्दिर तो गिर गये हैं, किन्तु मुख्य मंदिर अच्छी अवस्था में ज्यों का त्यों खड़ा है। मन्दिर की लम्बाई एक सौ दो फुट, चौड़ाई सड़सठ फुट और ऊँचाई एक सौ दो फुट है। मन्दिर के द्वार पर बहुत सुन्दर तोरण बना है। इस तोरण में देवताओं और गन्धर्वों की बहुत सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं। तोरण के बाद अर्ध-मंडप, उसके पीछे मंडप और मंडप के बाद महामंडप है। महामंडप के पीछे गर्भगृह या मुख्य मन्दिर है। उसमें संगमर्मर पत्थर के शिवाजी स्थापित हैं। गर्भगृह (जहाँ देवमूर्ति स्थापित होती है) चौकोर है, इसके चारों ओर परिक्रमा है, जो महामंडप में खुलती है। भीतर दीवालों पर नीचे से ऊपर तक देवताओं, ऋषियों, योगियों, अप्सराओं आदि की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। महामंडप की छत में वृत्ताकार सुन्दर खुदाई है। गर्भगृह के द्वार पर फूल-पत्ती की सुन्दर खुदाई और इनके बीच-बीच ध्यानावस्थित योगियों तथा गंगा और

यमुना की मूर्तियाँ हैं। गंगाजी घड़ियाल पर और यमुनाजी कछुए पर सवार हैं। प्रदक्षिणा और परिक्रमा के कोनों पर आठों दिक्पालों अर्थात् इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋर्त्य, वरुण, वायु, कुबेर और ईषाण की मूर्तियाँ बनी हैं। तीनों दीवालों में त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव की भव्य और विशाल मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न ढंग से नृत्य करती हुई अप्सराओं और देवताओं की अनेक मूर्तियाँ भी स्थान-स्थान पर बनी हैं।

मन्दिर का आकार हिमालय के 'कैलास' शिखर के आधार पर बनाया गया है। अर्थात् मन्दिर के शिखर हिमालय की चोटियों के आकार के हैं। गर्भगृह का शिखर मंडपों के शिखरों से ऊँचा है। महामंडप, मंडप और अर्धमंडप के शिखरों की ऊँचाई क्रमशः कम होती गयी है। इन मुख्य चार शिखरों के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे शिखर भी हैं। यदि किनारे से देखा जाय तो इसके शिखर हिमालय की शृंखला की तरह जान पड़ते हैं।

इनकी बाहरी दीवालों में तरह-तरह के फूल-पत्ते, ज्यामिति के आकार और मूर्तियाँ बनाकर उन्हें अलंकृत किया गया है। ऊपर से नीचे तक मन्दिर के चारों ओर मूर्तियों की तीन पंक्तियाँ हैं। इनमें देवी देवताओं की मूर्त्तियों के अतिरिक्त अप्सराओं के अनेक चित्र बने हैं।

मन्दिर के वर्णन से उसकी भव्यता की कल्पना नहीं हो सकती। शिल्पियों का प्रयोजन यह था कि मंदिर में पहुँचकर लोग संसारी बातों से हटकर पारलौकिक बातों का ध्यान कर सकें। खजुराहो के अन्य मंदिर भी इसी शैली के हैं। उनमें शिल्पकला के अनेक सुन्दर नमूने हैं। विश्वनाथ और लक्ष्मणजी के मंदिरों के मंडपों में शिला-लेख लगे हैं। ये लेख काले पत्थर पर संस्कृत श्लोकों में खुदे हैं। इनमें चन्देल राजाओं की वंशावली दी हुई है। इससे पता लगता है कि यह

मंदिर राजा धंग ने बनवाया था और इसमें उसने पन्ने के शिवजी की स्थापना की थी। कदाचित् लक्ष्मण वर्मा के बनवाये होने के कारण यह मन्दिर, जिसमें विष्णुमूर्ति स्थापित है, लक्ष्मणजी का मन्दिर कहलाता है। यहाँ वाराह और नन्दी की दो विशाल मूर्तियाँ भी हैं। नन्दी की बैठी हुई मूर्ति छः फुट ऊँची और सवा फुट लम्बी है। उस पर बड़ी चिकनी पालिश की हुई है। वाराह की मूर्ति पौने छः फुट ऊँची और पौने नौ फुट लम्बी है। इसके शरीर पर असंख्य देवताओं की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं।

भारत के अतीत गौरव की झलक पाने के लिए यह आवश्यक है कि लोग खजुराहो की यात्रा करें।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) खजुराहो कहाँ पर बसा हुआ है? (२) इसका नाम खजुराहो क्यों पड़ा? (३) कंडरिया महादेव का मन्दिर कैसा है? (४) लक्ष्मणजी के मन्दिर का यह नाम क्यों पड़ा?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों का वाक्यों में प्रयोग करो—किंवदन्ती, वृत्ताकार, भव्यता, प्रदक्षिणा। अपने देखे हुए किसी मन्दिर का वर्णन करो।

व्याकरण—निम्नलिखित वाक्यों का वाच्य-परिवर्तन करो—
मन्दिर का आकार 'कैलास'' शिखर के आधार पर बनाया गया है। मन्दिर में शिला-लेख लगे हैं। उस पर बड़ी चिकनी पालिश की गयी है।

---

१२. अन्योक्तियाँ

(परिचय—बाबा दीनदयाल की अन्योक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका अन्योक्ति-कल्पद्रुम हिन्दी का बहुमूल्य ग्रन्थ है। हिन्दी में अन्योक्ति लिखनेवाले ये सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, किसी ने इतनी और ऐसी मार्मिक अन्योक्तियाँ नहीं लिखी हैं।)

सुमन	तृषावंत	तोय	काहल
पारसमनि	गंधसार	दाड़िम	जंबुक

घनश्याम

करिये सीतल हृदय-बन सुमन गयौ मुरझाय।
सुनौ बिनय घनश्याम हे सोभा सघन सुहाय।
सोभा सघन सुहाय कृपा की धारा दीजै।
नीलकण्ठ प्रिय पालि सरस जग में जस लीजै।
बरनै दीनदयाल तृषा द्विजमन की हरिये।
चपला सहित लखाय मधुर सुर कानन करिये॥

नीरधि

गरजै बातन तें कहा धिक नीरधि ! गम्भीर।
विकल विलोकैं कूप पथ तृषावन्त तो तीर।
तृषावन्त तो तीर फिरैं तोहि लाज न आवै।
भँवर लोल कल्लोल कोटि निज बिभौ दिखावै।
बरनै दीनदयाल सिंधु तोको को बरजै।
तरल तरंगी ख्यात वृथा बातन तें गरजै॥

सरवर

कोलाहल सुनि खगन के सरवर जनि अनुरागि।
ये सब स्वारथ के सखा दुरदिन दैहैं त्यागि।
दुरदिन दैहैं त्यागि तोय तेरो जब जैहै।
दूरहिं ते तजि आस पास कोऊ नहिं ऐहै।
बरनै दीनदयाल तोहि मथि करिहैं काहल।
ये चल छल के मूल भूल मति सुनि कोलाहल॥

लोहा

लोहा ! द्रोह न कीजिये पारसमनि के साथ।
लाहि परस पैहै प्रभा भूपमनिन के माथ।

भूप मनिन के माथ तोहिं लखि जग हरखैगो।
करि करि कोटि प्रनाम सुमन तो पै बरखैगो॥
बरनै दीनदयाल कौन सतसंग न सोहा।
पैहै रूप अनूप बढ़ैगो कीमति लोहा॥

बंस

तो मैं बंस! न सार कछु बकिबोहू अभिमान।
तातें मलै न तोहिं को बिरचै आप समान॥
बिरचै आप समान न तो हिय सून निहारत।
तेरे पास हुतास तासु तें तिनहूँ जारत।
बरनै दीनदयाल दोष तिनको न कहौं मैं।
गंधसार करै सार सार है बंस न तो मैं॥

चातक

लागे सर सरवर परयो करयो चोंच घन ओर।
धनि-धनि चातक प्रेम तव पन पाल्यौ बरजोर।
पन पाल्यौ बरजोर प्रान परजंत निबाह्यौ।
कूप नदी नल नाल सिंधु जल एक न चाह्यौ।
बरनै दीनदयाल स्वाति बिन सबही त्यागे।
रही जन्म भरि बूँद-आस अजहूँ सर लागे॥

सिंह

टूटे नख रद केहरी वह बल गयौ थकाय।
हाय जरा अब आइकै यह दुःख दियौ बढ़ाय।
यह दुःख दियौ बढ़ाय चहूँ दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि स्वतंत्र फिरैं सब राजैं।
बरनै दीनदयाल हरिन बिहरैं सुख लूटे।
पंगु भयौ मृगराज आज नख रद के टूटे॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) 'घनश्याम' के कितने अर्थ हो सकते हैं? पाठ में से एक से अधिक अर्थवाले शब्दों को चुनो। उनके अर्थ बतलाओ। (२) पारस मणि क्या है? (३) चन्दन का प्रभाव बाँस पर क्यों नहीं होता?

लेखनार्थ—तुम अपने मन से कोई अन्योक्ति गद्य में लिखो।

छंद अलंकार—(१) 'अन्योक्ति' से क्या समझते हो? यह नाम क्यों पड़ा? (२) 'कुंडलिया' छन्द का लक्षण बतलाओ। ऐसा नाम रखने का प्रयोजन क्या है? क्या यह दो छंदों से मिलकर बनी है?

आदेश—जो अन्योक्तियाँ तुम्हें रुचें उन्हें कंठाग्र कर लो।

१३, चित्र-कला

(परिचय—इसके लेखक स्वर्गीय डाक्टर श्यामसुन्दरदास जी हैं। आपने हिन्दी की प्रसिद्ध संस्था काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना की थी। काशी विश्वविद्यालय में आप हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष थे। हिन्दी में उच्च कोटि के विषयों पर सर्वप्रथम ग्रन्थ लिखने का सूत्रपात आप ही ने किया है। साहित्यालोचन, भाषा-विज्ञान, रूपक-रहस्य आदि आप के प्रमुख ग्रंथ हैं। आपने सैकड़ों ग्रंथों का सम्पादन किया और हिन्दी की उन्नति के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये।)

प्रवेशक—सुन्दरता प्रकट करने के लिए जो पाँच ललित कलाएँ मानी जाती हैं उनमें चित्रकला एक महत्वपूर्ण कला है। भारत की चित्रकला प्राचीन युग से विख्यात है। इसमें उसी का संक्षिप्त परिचय है।

अंकन मानसिकता अधोगति परिपाटी

चित्र-कला का आधार कपड़े, कागज, लकड़ी, दीवार आदि का चित्रपट है, जिस पर चित्रकार अपनी कलम या कूँची की सहायता से भिन्न-भिन्न पदार्थों या जीवधारियों के प्राकृतिक रूप, रंग और आकार

आदि का अनुभव कराता है। वह कलम या कूँची से समतल या सपाट सतह पर स्थूलता, कृशता, छाया और प्रकाश आदि को यथायोग्य दिखाता है। वास्तविक पदार्थ को दर्शक जिस परिस्थिति में देखता है, उसी के अनुसार अंकन द्वारा वह अपने चित्रपट पर ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है जिसे देखकर दर्शक को चित्रगत वस्तु असल वस्तु-सी जान पड़ती है। अतएव यह स्पष्ट है कि इस कला में मूर्तता का अंश थोड़ा और मानसिकता का मुख्य होता है।

बौद्ध-धर्म के प्रसार के साथ ही भारत में इस कला का जैसा अनुपम विकास हुआ था, उसके ह्रास के साथ ही उसकी भी अधोगति हुई। इसमें संदेह नहीं कि बौद्धकाल ही इस देश की चित्र-कला का स्वर्ण युग था। अजंता की गुफाओं की उत्कृष्ट चित्रकारी इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। फिर भी चित्र-कला का यहाँ कुछ न कुछ प्रसार सदा बना रहा और बीच-बीच में उसमें नवीन जागृति भी देख पड़ती रही।

यों तो पटों, फलकों और तालपत्रों पर चित्र बनते ही थे, किन्तु उस समय तक चित्रण के मुख्य स्थल दीवारें ही थीं। भीतों की सजावट चित्रों द्वारा होती थी।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर सोलहवीं शताब्दी के अंत तक के कई चित्र काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के भारत-कला-भवन को प्राप्त हुए हैं। ये अपने ढंग के अनुपम हैं। इनका विषय कोई कथा-नक काव्य है, जिसकी भाषा कहीं फारसी और कहीं जायसी-काल की हिन्दी है। ये चित्र कागज पर खड़े बल में (किताबनुमा) बने हैं। वे अभी ठीक-ठीक पढ़े नहीं गये, तथापि उनके मिलने से अब यह चित्रण-परिपाटी गुजरात की ही सीमा में न रहकर दोआबे तक खिंच आती है।

यद्यपि राजपूत शैली का आविर्भाव इस काल के पूर्व सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हो गया था, पर उसका ठीक-ठीक विकास कुछ समय के उपरान्त हुआ। राजपूत शैली की राजस्थानी शाखा का मुख्य विषय रागमाला आदि रहा है। इस काल में बारहमासा के

चित्रों की ओर भी ध्यान दिया गया। धार्मिक चित्रों में कृष्णलीला को ही प्रधानता दी गयी। साहित्यिक विषयों के चित्र भी कुछ-कुछ मिलते हैं। इस शैली के चित्रों में वास्तविकता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था, जितना कल्पना की ओर।

इस देशी चित्रकला के साथ ही यहाँ के मुसलमान अधिपतियों, विशेष कर मुगलों के संरक्षण में भी चित्रकला का अच्छा विकास हुआ। परन्तु यह होते हुए भी हमको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मध्यकाल की सबसे लोकप्रिय चित्र-रचना-शैली राजपूताने की ही है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। यह शैली जनता की चित्ताकृति की सबसे अधिक द्योतक है।

संवत् १९१४ के बलवे के साथ ही भारत में जो युगान्तर उपस्थित हुआ, उसके साथ यहाँ की चित्र-कला प्रायः निःशेष हो गयी और यूरोप के बने चित्रों से भारत के रईसों, अमीरों तथा राजाओं के घरों का सजाव-शृंगार होने लगा। यह बात यहाँ तक बढ़ी कि यूरोप के भद्दे छपे रंगीन चित्र भारतवर्ष के घर-घर में व्याप्त हो गये। उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले भाग में रवि वर्मा की बड़ी धूम हुई।

श्रीयुत् अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके उद्भावक स्वनामधन्य श्रीयुत हावेल के उद्योग से भारत में एक नयी चित्र-कला का जन्म हुआ है। मुख्यतः अजन्ता की प्राचीन शैली की तथा राजपूत-मुगल शैली की कुछ बातों के और जापान-चीन की अंकन तथा अभिव्यंजन विधि के मेल से यह नवीन शैली निकली है। इसमें एक निजी मौलिकता है। प्रारंभ में, भावों का व्यंजन करना तथा प्राचीन दृश्य आदि दिखाना इसकी विशेषता थी, पर अब यह लोक के सामान्य दृश्य तथा प्रकृति के उत्तमोत्तम चित्रों का चित्रण भी करती है। ठाकुर महाशय की शिष्य-मण्डली देश में इस समय अच्छा काम कर रही है।

कम्पनी के समय में पटने में कई कारीगरों ने पाश्चात्य ढंग के 'शबीह' बनाने का अभ्यास किया था। मुगल कला की गिरती अवस्था

में इनका अच्छा प्रचार हुआ था। कलकत्ते के प्रो० ईश्वरीप्रसाद और उनके सुपुत्र नारायणप्रसाद एवं रामेश्वरप्रसाद इस शैली के विश्रुत चित्रकार हैं। मुगल शैली के दो-तीन बचे चित्रकारों में काशी के (स्वर्गीय) श्रीरामप्रसाद का आसन बहुत ऊँचा है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) कौन-कौन सी वस्तुएँ चित्रकला के प्रदर्शन के लिए आधार हैं? (२) अपनी कूँची से चित्रकार सपाट सतह पर चित्र की कौन-कौन सी विशेषताएँ दिखाता है? (३) 'मूर्तता' से क्या तात्पर्य है? चित्र-कला में उसका अंश कितना रहता है?

लेखनार्थ—(१) सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार में तुमने दीवार पर पुराने ढंग की चित्रकारी देखी होगी। उसका वर्णन करते हुए लेख लिखो। (२) पुराने ढंग के जो चित्र तुमने देखे हों उनसे नये ढंग के चित्रों का मिलान करते हुए दोनों का जो भेद समझ में आये लिखो। (३) मूर्तिकला पर इसी प्रकार निबन्ध लिखो।

—:०:—

१४. पपीहा

(परिचय—इस कविता की कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा आधुनिक काव्य के प्रतिनिधियों में से हैं। आप चित्रकला में भी प्रवीण हैं। गद्य में भी आपकी कई मनोहर रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, यामा और दीपशिखा नाम से आपकी कविताओं के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। नये ढंग के गीत लिखने में इनकी सबसे अधिक प्रसिद्धि है।)

प्रवेशक—इस कविता में पपीहा के प्रति उपालम्भ है।

समाधि पाहुन दीपशिखा मीन

जिसने अनुराग का दान दिया उससे कण माँग लजाता नहीं,

अपनापन भूल समाधि लगा वह पी का विहाग सुनाता नहीं।

नभ देख पयोधर श्याम घिरा मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं,
वह कौन सा पी है पपीहा तेरा जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं ॥
उसको अपना करुणा से भरा उर-सागर क्यों दिखलाता नहीं,
संयोग वियोग की घाटियों में, नव नेह में बाँध झुलाता नहीं ।
सन्ताप के संचित आँसुओं से नहला के उसे तू धुलाता नहीं,
अपने तन-श्यामल पाहुने को पुतली की निशा में सुलाता नहीं ॥
कभी देख पतंग को जो दुख से निज दीपशिखा को रुलाता नहीं,
मिल ले उस मीन से जो जल की निठुराई विलाप में गाता नहीं ।
कुछ सीख चकोर से जो चुगता अंगार किसी को सुनाता नहीं,
अब सीख ले मौन का मन्त्र नया यह पी-पी घनों को सुहाता नहीं ॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) पपीहा किससे और किस प्रकार अनुराग करता है ? (२) प्रेम के सम्बन्ध में पपीहे को किससे और क्या सीख लेनी चाहिए ? (३) 'विहाग' किस प्रकार के गान को कहते हैं ।

लेखनार्थ—(१) पतंग, मीन और चकोर के प्रति ऐसे ही उलाहने गद्य मे लिखो । (२) बादल का ओर से पपीहे के प्रति सन्देश अपने ढंग से लिखो ।

व्याकरण—(१) 'श्याम' में 'ल' लगाकर 'श्यामल' बना; पर दोनों के अर्थ एक ही हैं । इसी प्रकार कुछ और शब्दों में यही प्रत्यय लगाकर ऐसे ही शब्द बनाओ । (२) 'पयोधर' में कौन समास है, विग्रहपूर्वक समझाओ ।

---

१५. ये उड़नेवाले

प्रवेशक—पृथ्वी के घने जंगलों, अलंघ्य पर्वतों, समुद्र की तलहटी छान डालनेवाले घुमक्कड़ों की कहानियों की भाँति आकाश में घूमनेवाले साहसी वीरों की कहानियाँ भी बड़ी कुतूहलवर्धक और रोमांचकारी होती

हैं। विमान आज के विज्ञान की अद्भुत देन है। अब तो इससे भी आगे बढ़े आविष्कार राकेट द्वारा चन्द्रलोक की यात्रा की कल्पना करने लगे हैं।

अतिक्रमण	संकटापन्न	हिंस्र
अनवरत	उत्ताल	आक्सिजन

बचपन में लोग उड़न-खटोले की कहानी बड़े मनोयोग से सुनते हैं। थोड़ा और बड़े होने पर आकाश में ज्यों ही घरं-घरं का शब्द हुआ कि वे अपने-अपने घरों से बड़ी उत्सुकतापूर्वक उड़ते हुए विमान देखने निकल पड़ते हैं। सचमुच आकाश में निराधार उड़ने में कैसा आनन्द आता होगा! मनुष्य ने बादलों पर चढ़ कर चलने की कल्पना को सार्थक बना दिया।

विमान में उड़कर चलने की कल्पना जितनी सुखद है कभी-कभी उतनी ही दुःखद भी प्रतीत होती है। कभी इंजिन खराब हो गया, कभी तूफानों की भीषणता के कारण स्वयम् विमानों के प्राणों पर ही आ बनी, फिर भी साहसी व्यक्तियों ने इनकी चिन्ता न कर लम्बी-लम्बी भयावह यात्राएँ की हैं।

विमान के प्रारम्भिक काल में विमान द्वारा यात्रा करने के लिए बड़े-बड़े प्रोत्साहन दिये जाते थे। इनके लिए अच्छे पुरस्कारों की घोषणा की जाती थी। सन् १९०६ में लन्दन के प्रसिद्ध पत्र 'डेली मेल' ने लंदन से मैनचेस्टर तक विमान द्वारा सफर करनेवाले को १०००० पौंड का पारितोषिक देने की घोषणा की। किन्तु चार वर्षों तक कोई माई का लाल इसे लेने के लिए तैयार न हुआ। कहीं १९१० में पाल्हन नाम के एक उड़ाके ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर उड़ने का निश्चय किया। पहले दिन पाल्हन को किसी बाधा का सामना नहीं करना पड़ा। दूसरे दिन वायु का प्रचंड रूप देखकर वह हिम्मत हारने लगा। थोड़ा वायु-वेग और तीव्र हो जाने पर पाल्हन का विमान समेत कहीं पता न लगता। पाल्हन ने अपने विमान को ऊपर ले जाकर उड़ने का प्रयत्न किया। वह मृत्यु से भयानक खेल खेल रहा

था। अन्त में तूफानों की सारी भयंकरता का अतिक्रमण करता हुआ वह अपने उद्देश्य में सफल हुआ।

अतलान्तक महासागर को बीच में बिना कहीं ठहरे पार करने पर डेढ़ लाख रुपये पुरस्कार की घोषणा की गयी। हैरी हाकर और ग्रीव ने एक विमान लेकर यात्रा-आरम्भ की। यात्रा के आरम्भ में हाकर ने विमान को हल्का रखने के लिए उसके पहिये को निकाल दिया। चार घण्टे के बाद इंजिन में खराबी आ गयी और विमान को आँधी-पानी का सामना करना पड़ा। बादलों और तूफानों से टक्कर खाता हुआ विमान समुद्र की सतह पर उतरने के लिए विवश हो गया। समुद्र की सतह पर उतरने का अर्थ था मृत्यु का आलिंगन, आकाश में उड़ने का परिणाम था प्रबल झंझा के थपेड़ों से काल के गाल में समा जाना। ऐसी संकटापन्न स्थिति में शीघ्र ही कोई न कोई कार्य कर डालना था। समुद्र की सतह के समीप आकर वे लोग किसी जहाज की खोज करने लगे। ढाई घण्टे के बाद एक जहाज दिखाई पड़ा। तूफान के कारण समुद्र में उत्ताल तरंगें उठ रही थीं। किसी प्रकार डेढ़ घण्टे के अनवरत परिश्रम के बाद प्राणरक्षा की जा सकी।

स्केन नामक एक व्यक्ति साढ़े नौ मील ऊँचे उड़ चुका है। ऊपर उसे कभी लगता था कि आक्सिजन समाप्त हो गया, कभी कुहासे के कारण कम्पास तक नहीं सुझाई पड़ता था और आसन्न मृत्यु से वह घबरा जाता था। एक बार तो ऐसा हुआ कि अब मरा तब मरा। हिरे की खिड़की चीर डालने पर स्वच्छ वायु से उसकी रक्षा हुई। नीचे आने पर स्केन को प्रसन्नता नहीं थी। उसका विचार अभी और ऊपर जाने का था।

हवाई डाक के विमान-चालकों की साहसपूर्ण कहानियाँ तो और भी विचित्र हैं। कैप्टेन टामसन का विमान तूफानों से टकराकर एक जंगल में गिर पड़ा। उसके चारों ओर हिंस्र पशुओं का चीत्कार सुनाई पड़ता था। दिन में भी बड़ा अँधेरा था। किसी प्रकार दस दिन में वह पास

के हवाई अड्डे पर पहुँच पाया। एक दूसरे चालक की कहानी सुनकर रोमांच हो आता है। उसका विमान एक दलदल में गिरा। उसके चारों ओर घड़ियाल टकटकी लगाए देख रहे थे। जहाज धीरे-धीरे धँसता जा रहा था। चालक अपनी मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा था। केवल पंख बाकी बच गये थे। वह पंख पर चढ़ ही रहा था कि लोग सहायता के लिए पहुँच गये।

इन साहसी उड़ाकों के कारण ही आज विमान-यात्रा इतनी सुगम प्रतीत हो रही है। भविष्य में विमानों से बहुत काम लेना है। अगम्य स्थानों की खोज, बीहड़ स्थानों का निरीक्षण विमान द्वारा बड़ी सरलता से हो सकता है। आकाश में दूर चमकनेवाले चन्द्रलोक की यात्रा इसी विमान से सम्भव हो सकेगी।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) उड़ते समय विमान को आकाश में क्या बाधाएँ मिलती हैं? (२) विमान के प्रारम्भिक काल में उड़ाकों को प्रोत्साहन क्यों दिया जाता था? (३) उड़ते समय पाल्हन को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा? (४) हैरी हाकर और ग्रीव के प्राण कैसे बचे?

लेखनार्थ—निम्नलिखित शब्दों के विलोम बताओ—

साहस, चिन्ता, तीव्र, प्रबल।

व्याकरण—निम्नलिखित शब्दों के समास बताओ—

हिंस्र-पशु, वायु-वेग, आँधी-पानी।

---

१६. सुदामा-सुशीला-संवाद

(परिचय—यह पाठ नरोत्तमदास के सुदामा-चरित्र से लिया गया है। सुदामा-चरित्र अनमोल ग्रन्थ है। दरिद्रता का इतना सजीव वर्णन,

मित्रता का अनुकरणीय उदाहरण अत्यन्त दुर्लभ है। सरस और व्यवस्थित भाषा में कवि ने अपनी सारी भावुकता उड़ेल दी है।)

प्रवेशक—जब सुदामा की स्त्री सुशीला उनसे बार-बार द्वारिका जाने को कहने लगी तब सुदामा झल्ला उठे—सारे संसार को मैं शिक्षा दूँ, तू स्त्री होकर चली है मुझे शिक्षा देने ! अन्त में सुदामा को पत्नी के आगे हार माननी पड़ी।

बाजि पैज चक्कवै अंतरजामी
कनावड़ो जक

सुदामा—
सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय ! ताकों कहा अब देती है सिच्छा।
जे तप ते परलोक सुधारत सम्पति की तिनके नहिं इच्छा।
मेरे हिये हरि के पद-पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिए बावरी बाँमन को धन केवल भिच्छा॥

सुशीला—
दानी बड़े तिहुँ लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली बिधि सिद्धि करौ पिय मेरो मतौ लै।
दीनदयाल के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो तिहूँ पन क्यों कन माँगत डोलै॥

सुदामा—
छत्रिन के पन जुद्ध, जुवा, सजि बाजि चढ़ै गजराजन हीं।
बैस को बानिज और कृषी, पन सूद्र को सेवन-साजन हीं।
बिप्रन को पन है जु यही सुख-सम्पति सों कछु काज नहीं।
कै पढ़िबो कै तपोधन है कन माँगत बाँभनै लाज नहीं॥

सुशीला—
कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत बितीत गयो सिसियातहिं हौं हठती पै तुम्हैं न हठौती।

जौ जनती न हितू हरि सों तुम्हें काहे को द्वारिकै पेलि पठौती ।
या घर तें न गयौ कबहूँ पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥

सुदामा—

छाँड़ि सबै तक तोहिं लगी बक आठहु जाम यहै जक ठानी ।
जातहि दैहैं लदाय लढ़ा भरि लैहौं लदाय यहै जिय जानी ।
पावैं कहाँ तें अटारी अटा जिनके विधि दीन्ही है टूटी-सी छानी ।
जौ पै दरिद्र लिखो है ललाट तौ काहू तें मेटि न जात अयानी ॥

सुशीला—

पूरन पैज करी प्रहलाद की खंभ सों बाँध्यौ पिता जिहिं बेरे ।
द्रौपदी ध्यान धर्यौ जबहीं तबहीं पट-कोट लगे चहुँ फेरे ।
ग्राह तें छूटि गयन्द गयौ पिय ! है हरि को निहचै जिय मेरे ।
ऐसे दरिद्र हजार हरैं वे कृपानिधि लोचन-कोर के हेरे ॥

सुदामा—

चक्कवै चौंकि रहे चकि से तहाँ भूले से भूप अनेक गनाऊँ ।
देव गंधर्व औ किन्नर जच्छ से साँझ लौं देखे खरे जिहि ठाऊँ ।
तैं दरबार विलोक्यौ नहीं अब तोहि कहा कहिकै समझाऊँ ।
रोकिये लोकन के मुखिया तहँ हौं दुखिया किमि पैठन पाऊँ ॥

सुशीला—

भूले से भूप अनेक खरे रहौ ठाढ़े रहौ तिमि चक्कवै भारी ।
देव गंधर्व और किन्नर जच्छ से रोके जे लोकन के अधिकारी ।
अन्तरजामी वै आपु ही जानिहैं मानि यहै सिख लेहु हमारी ।
द्वारिकानाथ के द्वार गये सब तें पहिले सुधि लैहैं तिहारी ॥

सुदामा –

प्रीति में चूक न है उनके हरि मो मिलिहैं उठि कंठ लगाय कै ।
द्वार गये कछु दैहैं पै दैहैं वै द्वारिकानाथजू सब लायकै ।
या विधि बीत गए पन द्वै अब तो पहुँचौ विरधापन आय कै ।
जीवन केतो है जाके लिए हरि सों अब होहुँ कनावड़ो जाय कै ।

सुशीला—

हूजै कनावड़ो बार हजार लौं जो हितू दीनदयाल सो पाइयै।
तीनहुँ लोक के ठाकुर हैं तिनके दरबार न जात लजाइयै।
मेरी कही जिय में धरिकै पिय! भूलि न और प्रसंग चलाइयै।
और के द्वार सो द्वार कहा पिय! द्वारिकानाथ के द्वारे सिधाइयै॥

सुदामा—

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै जक तेरे।
जौ न कहौ करियै तौ बड़ो दुख जैयै कहा अपनी गति हेरे।
द्वार खड़े प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारि तैं देखु बिचारि कै भेंट को चारि न चाउर मेरे॥

यह सुनि कै तब ब्राह्मनी, गई परोसिनि पास।
पाव सेर चाउर लिये, आई सहित-हुलास॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बाँधि दुपटिया खूट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग वाली बूट॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) सुदामा ने ब्राह्मणों का क्या धर्म बतलाया है? (२) सुशीला सुदामा से द्वारिका जाने के लिए बार-बार क्यों अनुरोध करती है? (३) श्रीकृष्ण के दरबार में जाने से सुदामा क्य संकोच कर रहे थे?

लेखनार्थ—(१) 'जातहि दैहैं लदाय लढ़ा भरि लैहौं लदाय यहै जिय जानी' का व्यंग्य स्पष्ट करो। (२) अन्तिम दोहे को छोड़कर सब सवैया छन्द हैं। गोस्वामी तुलसीदास के सवैया छन्दों से इन्हें मिलाओ। (३) प्रहलाद, द्रौपदी और गयन्द की अन्तर कथा बतलाओ।

व्याकरण—निम्नलिखित शब्दों का तत्सम रूप लिखो—

सिच्छक, जुद्ध, बाँभनै, बिरधापन।

अलंकार—इन कविताओं में अनुप्रास अलंकार ढूँढ़ो।

---

१७. अतीत के गुरु-शिष्य

प्रवेशक—प्राचीन काल में गुरु-शिष्य का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। गुरु शिष्य को पुत्रवत् मानता था और शिष्य गुरु का पिता के तुल्य आदर करता था। कोलाहल से दूर शांत गुरुकुलों में अध्यापक और शिष्य के सुखद जीवन की आज कल्पना भर की जा सकती है।

सत्ताधारी	निस्पृह	निष्ठा
प्रवाद	उत्तरदायित्व	जनाकीर्ण

प्राचीन भारत में अध्यापक का कार्य बहुत ही श्रेष्ठ समझा जाता था। अध्यापकों की सामाजिक स्थिति इतनी सुदृढ़ थी कि बड़े-बड़े सत्ताधारी उनके आगे सादर मस्तक झुकाते थे। इसका प्रधान कारण था उनका निस्पृह जीवन और अपने पुनीत कर्तव्य के प्रति अविचल निष्ठा। वह निर्धन विद्यार्थी को शिक्षा देने से अस्वीकार नहीं कर सकता था। वरन् उसके भोजन तथा रहने के स्थान का प्रबन्ध भी करता था। उसकी दृष्टि में धनी और निर्धन का भेद न था।

अध्यापक और शिष्य के सम्बन्ध का भवन प्रेम की नींव पर आधारित था। पूरी शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् शिष्य अपने सामर्थ्य के अनुसार गुरु-दक्षिणा चुकाता था। आज की तरह एक निर्धारित रकम देने के लिए बाध्य न था। जो लोग पूर्ण रूप से शिक्षा समाप्त होने पर गुरु-दक्षिणा नहीं चुकाते थे, समाज में उनकी बड़ी अप्रतिष्ठा होती थी। नागसेन भिक्षु था अतः अपने राजकुमार शिष्य मिलिन्द से गुरु-दक्षिणा के रूप में कुछ लेना उसने अस्वीकार कर दिया। मिलिन्द सामाजिक प्रवादों से बचने के लिए नागसेन से गुरु-दक्षिणा स्वीकार करने का बार-बार अनुरोध करने लगा। कौत्स अपने गुरु वरतन्तु से विद्या प्राप्त करने के उपरान्त गुरु-दक्षिणा माँगने का

अनुरोध करने लगा। ऋषि ने कहा कि मुझे गुरु-दक्षिणा नहीं चाहिए। कौत्स के बार-बार कहने पर ऋषि ने सहस्र स्वर्णमुद्रा माँगी। कौत्स उदास हो गया किन्तु वह साहसी शिष्य दक्षिणा की खोज में निकल पड़ा, अन्त में महाराज रघु से माँगकर गुरु की दक्षिणा चुका दी।

गुरु का शिष्य के प्रति उतना ही प्यार था जितना पिता अपने पुत्र के प्रति करता है। शिष्य भी गुरु को पितृतुल्य मानता था। यह बात ग्रन्थों के सिद्धान्तों में ही नहीं वर्णित है, ईसा की सातवीं शताब्दी में इत्सिंग ने अपने यात्रा विवरण में भी इसका उल्लेख किया है। पठन-पाठन के उत्तरदायित्व के साथ-साथ अध्यापक का कर्तव्य होता था कि शिष्य को अपनी तरह योग्य बना दे। गौतम बुद्ध ने अपने गुरु के सम्बन्ध में अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए कहा था कि उन्होंने मुझे अपने समकक्ष बना दिया।

जब गुरु की अपने शिष्य के प्रति उतनी ममता थी तब स्वाभाविक था कि शिष्य भी अपने गुरु के प्रति अपरिमेय श्रद्धाभाव रखे। शिष्य गुरु का आदर करता था। वह उनसे ऊँचे आसन पर नहीं बैठता था। पीठ पीछे उनकी निन्दा करना अक्षम्य अपराध समझा जाता था। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि शिष्य गुरु का अन्धभक्त होता था। गुरु के निन्द्य आचरणों के प्रति भी वह पूर्ण जागरूक रहता था। आपस्तम्ब ने लिखा है कि गुरु को देवता समझना चाहिए; उसी ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि शिष्य को गुरु का ध्यान उसकी त्रुटियों की ओर एकान्त में दिलाना चाहिए।

शिष्य गुरु का छोटा से छोटा काम करने को सर्वदा प्रस्तुत रहता था। उसके जूठे बर्तन माँजने में उसे प्रसन्नता होती थी, गौरव का बोध होता था। गुरु की समिधा के लिए लकड़ियाँ ले आना, आश्रम की गायों को चराना उसका कार्य होता था। कृष्ण ऐसे महान् पुरुष गुरु की सेवा करने में अपनी महत्ता समझते
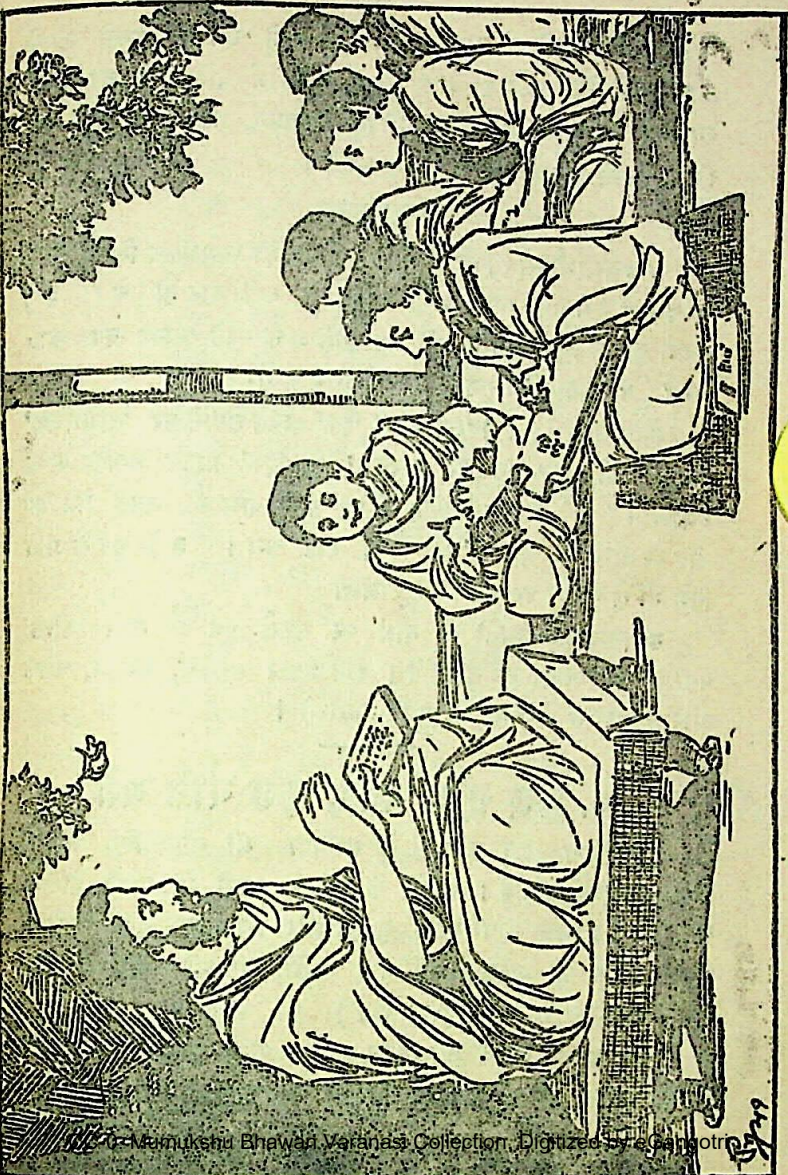
थे। गुरु विद्यार्थियों को ऐसा कार्य नहीं करने देते थे जिससे उनके अध्ययन में किसी तरह की बाधा पड़े। जनाकीर्ण बस्तियों से दूर शान्त स्थान में गुरु-शिष्य का जीवन कितना सुखप्रद, कितना मनोहर रहा होगा, इसकी कल्पना भर की जा सकती है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) प्राचीन काल में गुरु की सामाजिक स्थिति कैसी थी? (२) वरतन्तु अपने शिष्य कौत्स से क्यों रुष्ट हो गये? (३) गौतम बुद्ध ने अपने गुरु के प्रति श्रद्धाञ्जलि व्यक्त करते समय क्या कहा था? (४) शिष्य का गुरु के प्रति कैसा भाव था?

लेखनार्थ—(१) 'समाज' में 'इक' प्रत्यय लगाने पर 'सामाजिक' बना। इसी प्रकार 'संसार, व्यवहार' में 'इक' प्रत्यय लगाकर शब्द बनाओ। (२) 'अध्यापक और शिष्य के सम्बन्ध का भवन प्रेम की नींव पर आधारित है।' इसका अर्थ स्पष्ट करो। (३) गुरु के प्रति विद्यार्थी के कर्तव्य पर एक निबन्ध लिखो।

व्याकरण—'कुत्स' के नाम पर उनके पुत्र का नाम 'कौत्स' पड़ा। यह अपत्यवाचक तद्धित है। इसी प्रकार बसुदेव, दशरथ, चणक और सुमित्रा से अपत्यवाचक तद्धित बनाओ।

---

१८. कुछ गूँज गयी, कुछ गीत गते

(परिचय—इस कविता के रचयिता श्री गोपालसिंह नेपाली प्रसिद्ध नवयुवक कवि हैं। प्रकृति के सुन्दर दृश्यों में उनकी प्रतिभा खूब रमी है। इनकी भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहयुक्त है। भावों में किसी प्रकार की उलझन नहीं है। उमंग, रागिनी, नीलिमा और पंचमी इनकी कविताओं के संग्रह हैं।)

प्रवेशक—सावन की समाप्ति पर बादल पानी बरसाकर वापस लौट रहे हैं। भावुक कवि को सावन के उन्हीं रसीले दिनों की याद आ रही है।

द्रवित

पावस की ऋतु भी लौट रही
सावन के दिन भी बीत गये
मस्ती का आलम लिये चले
दे करुणा के दो गीत गये।

(१)

मृदु मन्द पवन के झोंकों में
जैसे पर खोल चले पंछी
कानन-जीवन के क्षण क्षण में
जैसे रस घोल चले पंछी
वैसे उड़ चले घटाओं के
पंछी भी जीवन-डाली से
अवरुद्ध सूर्य भी झाँक उठा
झीने कुहरे की जाली से
बादल वन-वन अमराई से
कुछ गूँज गयी, कुछ गीत गये।

(२)

काले काले बादल बरसे
मिट्टी से महँक उठी भीनी
चंचल-चंचल बिजली चमकी
झलकी सावन की रंगीनी
जगती के पत्थर तने रहे
घन के दृग से जलधार चली
बन-बन में, रेत पहाड़ों में
यह बार पुकार-पुकार चली
तरु-मरु को क्या, पत्थर को भी
वे प्रेमी बादल बीत गये।

(३)

श्यामल घन के बीहड़ वन में
था इन्द्रधनुष रंगीन तना
तर्जन था बना धनुष-डोरी
घन-गर्जन था टंकार बना
बिजली के बाण चले चहुँ दिशि
बादल के दल-दल बिखर गये
पल भर में कलश हुए खाली
जलवाले बादल निखर गये
घन अरुण गये, घन श्याम गये
घन हरित गये घन पीत गये।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) 'सावन' को 'रसमय' क्यों कहा गया है? (२) मिट्टी से भीनी महँक क्यों उठी? (३) प्रेमी बादल पत्थर को कैसे जीत गये?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित का भाव-सौन्दर्य स्पष्ट करो—
'झलकी सावन की रंगीनी।'

(२) 'सावन' की तुक 'घन' है। इस प्रकार इसकी पाँच तुक बतलाओ।

अलंकार—दूसरे और तीसरे छन्द के अलंकार बताओ।

---

१९. हमारा साहित्य

प्रवेशक—हमारा हिन्दी साहित्य भारत के विस्तृत भू-भाग से सम्बन्ध रखता है और इसकी परम्परा पुरानी है। जब देशी भाषाओं का रूप पृथक होने लगा, उसके कुछ पूर्व का सारा साहित्य पुराना हिन्दी

साहित्य ही माना जाता था। अब भी हिन्दी-साहित्य के भीतर कई भाषाओं का साहित्य आता है। अवधी, ब्रज और खड़ी बोली का साहित्य तो हिन्दी का साहित्य है ही, राजस्थानी, मैथिली, पंजाबी आदि का पुराना साहित्य भी हिन्दी साहित्य ही माना जाता है। मीराबाई (राजस्थानी), विद्यापति (मैथिली), नानक (पंजाबी) हिन्दी-साहित्य के ही कवि हैं।

मान्यता वात्सल्य स्वच्छन्द प्रगतिशील

विश्व में हमारी संस्कृति सबसे प्राचीन और साहित्य सबसे गौरवपूर्ण है। हमारी परम्परा महाकवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास की परम्परा है। हमारा काव्य विश्व का सर्वश्रेष्ठ काव्य । जिस संस्कृत भाषा में उक्त कवियों की वाणी मुखरित हुई उसी के वंश में हमारी हिन्दी भी जन्मी है। हिन्दी भाषा भारत में सबसे विस्तृत भू-भाग में बोली और समझी जाती है। हिन्दी-साहित्य आदि से ही संस्कृत-साहित्य को अपना आदर्श मानकर बढ़ा है और उसकी सारी मान्यताओं का बराबर निर्वाह करता चला आ रहा है। अपने इसी विस्तार और इसी गुण के कारण हिन्दी-साहित्य भारती जनहृदय के निकट अधिक है।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास पिछले एक सहस्र वर्षों का इतिहास है। संस्कृत के अनन्तर प्राकृत और प्राकृत के बाद अपभ्रंश का जन्म हुआ और जब यह भाषा पूर्णता को प्राप्त हुई तब धीरे-धीरे उसी से हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं बँगला, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि का उद्भव होने लगा। हमारा साहित्य अपभ्रंश-साहित्य का विकसित रूप है। अब यह इतना अधिक आगे बढ़ आया है कि दोनों के रूप बहुत कुछ भिन्न-भिन्न हो गये हैं। पर हिन्दी की आरम्भिक रचनाओं जैसे पृथ्वीराज-रासो, बीसलदेवरासो आदि में अपभ्रंश के रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं। पुराने कवियों कबीर, तुलसी, सूर आदि की कविता में भी उसके शब्द कभी-कभी आ जाते हैं।

हमारे साहित्य का इतिहास चार भागों में बाँटा गया है—१. आदिकाल (वीरगाथाकाल) संवत् १००० से १४०० तक, २. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) संवत् १४०० से १७०० तक, ३. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) संवत् १७०० से १९०० तक और ४. आधुनिक काल (गद्यकाल) सं० १९०० से। काल-विभाजन में साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों का ध्यान रखा गया है। आदिकाल अर्थात् वीरगाथाकाल में हमें वीरों की कथाएँ और उनके युद्धों के प्रचुर वर्णन 'रासो' नाम से मिलते हैं जो वीररस-प्रधान हैं। भक्तिकाल में भक्ति-सम्बन्धी रचनाएँ सबसे अधिक मिलती हैं। रीतिकाल में साहित्य-रीति अर्थात् रस, अलंकार, पिंगल-सम्बन्धी रचनाओं की प्रधानता है। आधुनिक युग में गद्य की प्रधानता है।

अपनी परम्परा के अनुसार हिन्दी का प्राचीन इतिहास पद्य-प्रधान है। संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं में पद्य की ही बहुलता है। अतः हिन्दी में प्राचीन गद्य-साहित्य बहुत कम मिलता है। काव्य की ओर हिन्दी का झुकाव अधिक रहा है। अतः पद्य का साहित्य हिन्दी में बहुत है और स के अनेक भेद भी दिखाई देते हैं।

भक्तिकाल की दो शाखाएँ हैं—१. निर्गुण और २. सगुण। निर्गुण शाखा में कबीर, नानक, दादू आदि सन्त कवियों की वाणी गिनी जाती है। इस शाखा के कवि ईश्वर के निराकार रूप को मानते हैं और ज्ञानोपदेश करते हैं। सगुण शाखा में सूरदास, तुलसीदास आदि भक्त कवियों की गणना है। ये ईश्वर के साकार रूप की उपासना करनेवाले और अवतारों में विश्वास रखनेवाले हैं।

सगुण शाखा के कवि भी राम और कृष्ण के भेद से दो प्रकार के हैं—१. रामभक्त कवि, २. कृष्णभक्त कवि। रामभक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास, हृदयराम आदि प्रसिद्ध हैं। महाकवि तुलसीदास का रामचरितमानस तो धर्म-ग्रन्थ की भाँति पूजा जाता है। भारत में जितना प्रचार इस ग्रन्थ का है उतना भाषा के अन्य किसी ग्रन्थ का नहीं। कृष्णभक्त कवियों में सूरदास, नन्ददा
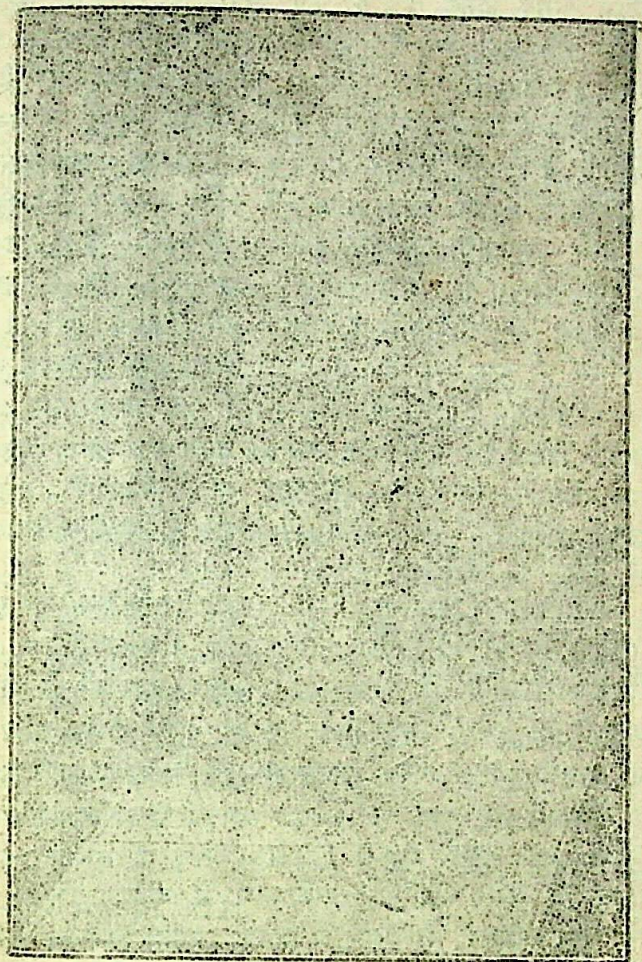
गोस्वामी तुलसीदास

रसखानि आदि अनेक कवि हुए हैं। सूरदास का सूरसागर हिन्दी साहित्य का अनूठा ग्रन्थ है। यह भक्ति, वात्सल्य तथा शृंगार रस का सागर है। रसखानि की रचना-सी सरलता क्वचित् ही दिखाई देती है।

रीतिकाल में बिहारी, मतिराम, भूषण, पद्माकर आदि बड़े अच्छे कवि हुए हैं। भूषण, पद्माकर आदि ने साहित्यशास्त्र-सम्बन्धी विषयों पर ग्रन्थ रचे हैं। उनके अन्य शास्त्र और काव्य एक साथ हैं। बल्कि यों कहिए कि उनके इन ग्रन्थों में काव्य की मात्रा शास्त्र से बढ़कर है। यद्यपि बिहारी ने कोई शास्त्रीय ग्रन्थ नहीं लिखा, फिर भी उनका काव्य किसी भी शास्त्र-मर्मज्ञ के काव्य से कम नहीं है। इस युग में शृंगार रस की धारा बड़े वेग से बही। काव्य-भाषा ब्रजभाषा का स्वरूप भी इसी युग में पूर्णत्व को प्राप्त हुआ। मध्यकाल में कुछ कवि ऐसे भी दिखाई देते हैं जिन्होंने रीति या शास्त्र की चिन्ता न करके स्वच्छन्द रूप से कविता की और बड़ी मनोहर कविता की। ठाकुर, आलम, घनआनन्द, बोधा आदि ऐसे ही कवि हैं जिनमें सबसे उत्तम रचना घनआनन्द की है।

आधुनिक युग में हिन्दी-साहित्य में महान् परिवर्तन हुए। इस युग में साहित्य गद्य की ओर झुका और प्राचीन काव्य-भाषा ब्रज को छोड़कर खड़ी बोली को ग्रहण किया। समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखकर खड़ी बोली गद्य का स्वरूप ही हिन्दी गद्य के लिए उपयुक्त हुआ, क्योंकि मुसलमानी समय से इसका प्रचार समस्त देश में पर्याप्त हो चुका था। पहले संस्कृत-ग्रन्थों की टीकाएँ और अनुवाद खड़ी बोली गद्य में होते थे। बाद में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इसे व्यवस्थित करके पद्य में व्यवहृत किया, जो आगे चलकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि के प्रयत्नों से प में भी पूर्वरूप से प्रतिष्ठित हो गई। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने उसका पद्य रूप परिमार्जित किया। बाबू जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला',

महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवियों ने उसमें सरसता और व्यंजन-शक्ति बढ़ायी।

हिन्दी का गद्य-साहित्य बड़ी तीव्रता से बढ़ रहा है। नाटक, उपन्यास, कहानी, समालोचना आदि सभी प्रकार की रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हिन्दी में मिलती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबन्धों और आलोचनाओं द्वारा गद्य की भाषा बहुत ही परिष्कृत और सारगर्भ बना दी है।

हमारे साहित्य का भविष्य बहुत ही समुज्ज्वल है। चारों ओर हिन्दी के साहित्यकार साहित्य-निर्माण कर रहे हैं। इधर कुछ ऐसी रचनाएँ भी होने लगी हैं जिन्हें प्रगतिशील नाम दिया गया है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि वह समय अब दूर नहीं है जब हिन्दी में सब प्रकार की साहित्य-शाखाओं में इतना प्रचुर निर्माण हो जायगा कि वह विश्व की समृद्ध भाषाओं में गिनी जायगी।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) प्राचीनकाल में पद्य का प्रचार क्यों अधिक मिलता है? (२) हिन्दी साहित्य की परम्परा किस साहित्य से मिली है और उसकी कौन-सी विशेषताएँ उसमें आयी हैं? (३) हिन्दी-साहित्य में काल विभाजन किस प्रकार किया गया है और प्रत्येक काल की प्रमुख विशेषता क्या है?

लेखनार्थ—(१) तुम्हारी पाठ्य-पुस्तक में जिन कवियों की रचनाएँ आयी हैं उन्हें हिन्दी के विभिन्न युगों के अनुसार पृथक्-पृथक् करो और उसकी जो विशेषता दिखाई दे उसका भी उल्लेख करो। (२) हिन्दी के जिन-जिन कवियों या लेखकों के नाम वर्तमान समय में प्रसिद्ध हों उनकी रचनाएँ पढ़ो और उन्हें पढ़ने से जो विचार तुम्हारे मन में उठें उन्हें लिखो।

आदेश—पुस्तकालय से हिन्दी-साहित्य का कोई संक्षिप्त इति-• कर पढ़ो।

—:०:—

२०. वृन्द-विनोद

(परिचय—वृन्द जोधपुर के रहनेवाले थे। इनकी वृन्द-सतसई बहुत प्रसिद्ध है। इसमें नीति सम्बन्धी सात सौ दोहे हैं। ये अधिकतर सूक्तिकार—अच्छी उक्ति बनानेवाले—के रूप में विख्यात हैं।)

आरसी   बहेरा

विद्या-धन उद्यम बिना, कहो जु पावै कौन।
बिना डुलाए ना मिलै, ज्यों पंखा को पौन ॥ १ ॥
सरसुति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों-त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात ॥ २ ॥
आप बुरे जग है बुरो, भलो भले जग जानि।
तजत बहेरा छाँह सब, गहत आम की आनि ॥ ३ ॥
मूरख को पोथी दई, बाँचन को गुन गाथ।
जैसे निरमल आरसी, दई अंध के हाथ ॥ ४ ॥
मधुर वचन तें जात मिटि, उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान ॥ ५ ॥
काहू को हँसिए नहीं, हँसी कलह को मूल।
हाँसी ही तें भयो है, पांडव-कुल निरमूल ॥ ६ ॥
दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता, कैसे हूँ सुख देत।
धोए हूँ सौ बेर के, काजर होय न सेत ॥ ७ ॥
अहित किये हूँ हित करै, सज्जन परम सधीर।
सोखे हूँ सीतल करै, जैसे नीर समीर ॥ ८ ॥
जैसे बंधन प्रेम को, तैसो बंधन और।
कालहिं भेदै कमल को, छेदि न निकरै भौंर ॥ ९ ॥

जो सबही को देत है, दाता कहिये सोय।
जलधर बरसत सम विषम, थल न विचारत कोय ॥ १० ॥
एक दसा निबहै नहीं, जनि पछितावहु कोय।
रविहूँ की इक दिवस में, तीन अवस्था होय ॥ ११ ॥
भले बंस संतति भली, कबहूँ नीच न होय।
ज्यों कंचन की खान में, काँच न उपजै कोय ॥ १२ ॥
हीन जानि न विरोधिये, वह तौ तन दुख-दाय।
रजहूँ ठोकर मारिए, चढ़ै सीस पर आय ॥ १३ ॥
दान दीन को दीजिए, मिटै दरिद की पीर।
औषधि वाको दीजिए, जाको रोग सरीर ॥ १४ ॥
धन अरु यौवन की गरब, कबहूँ करिए नाहिं।
देखत ही मिटि जात है, ज्यों बादर की छाहिं ॥ १५ ॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) विद्या-धन कैसे मिलता है? (२) सज्जन का क्या लक्षण है? (३) हीन जानकर क्यों किसी का विरोध नहीं करना चाहिए? (४) दान दीन को क्यों देना चाहिए? (५) धन और यौवन का गर्व क्यों व्यर्थ है?

लेखनार्थ—(१) रहीम के दोहे तुम पढ़ चुके हो। रहीम और वृन्द के दोहों में तुमको किसके दोहे अच्छे लगे? (२) 'कमल' के पाँच पर्यायवाची शब्द लिखो।

आदेश—जो दोहे पसन्द आएँ उन्हें कण्ठस्थ करो।

---

२१. रेडियो

प्रवेशक—रेडियो बहुत ही उपयोगी आविष्कार है। यह मनोरंजन और शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। किसी एक स्थान की ध्वनि विश्व के सुदूर कोने में पहुँचाने का श्रेय रेडियो के आविष्कार को ही है।

ईथर एरियल क्रमोन्नत तरंगें

रेडियो

रेडियो आज का सर्वाधिक लोकप्रिय आविष्कार है। अपने घर में बैठे-बैठे रेडियो की सुई घुमाते जाइए और दिल्ली, लन्दन, न्यूयार्क कहीं से गाना, समाचार या कोई और मनोरंजक कार्य-क्रम सुन लीजिए। भाषण न्यूयार्क में हो रहा है, किन्तु उसे एक साथ दूर-दूर के लोग सुन सकते हैं। संगीत दिल्ली में हो रहा है किन्तु उसका आनन्द अमेरिका, चीन, जापान या किसी दूसरे देश के लोग भी उठा सकते हैं। अलाउद्दीन के चिराग में इतनी शक्ति कहाँ कि इतनी विचित्रता उत्पन्न कर सके—हजारों मील दूर लन्दन टावर की जगत् प्रसिद्ध घड़ी "बिगबेन" की ध्वनि यहाँ तक पहुँचा सके।

रेडियो की करामात विद्युत-तरंगों की करामात है, बेतार के तार की यह अगली सीढ़ी है। बेतार के तार के आविष्कार होने का श्रेय मारकोनी को है। बाद में कई वैज्ञानिकों के प्रयत्न से रेडियो का आविष्कार हुआ।

आकाश में हवा से भी पतला बहुत ही सूक्ष्म पदार्थ विद्यमान है। इसे वैज्ञानिकों ने ईथर का नाम दिया है। सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश इसी ईथर के द्वारा हमारे पास तक पहुँचता है। ईथर में तरंगें होती हैं। इसी से बेतार के तार का संदेश भी भेजा जाता है। जिस तरह पानी में लहरें उत्पन्न की जाती हैं उसी प्रकार ईथर में भी लहरें उत्पन्न की जाती हैं।

भौतिक उपायों द्वारा विद्युत् की चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न की जाती हैं। प्रेषक-यन्त्रों के द्वारा ईथर में ये ही चुम्बकीय तरंगें लहरें उत्पन्न करती हैं और ग्राहक यन्त्र इसकी सांकेतिक भाषा को पकड़ लेता है। इस तरह एक क्षण में समाचार दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच जाता है। बेतार के तार से अछोर समुद्र पर चलते हुए जहाज तथा आकाश में उड़ते हुए विमानों में बैठे लोग विचार-विनिमय कर सकते हैं। संकटापन्न-स्थिति में सहायता के लिए सूचना भेज सकते हैं।

बेतार द्वारा तार भेजनेवाले यन्त्रों से आवाज भेजने का काम नहीं लिया जा सकता। इसमें जो विद्युत् का कम्पन उत्पन्न होता है, इतना कमजोर होता है कि आवाज नहीं भेजी जा सकती। आवाज भेजने के लिए क्रमोन्नत तरंगों की आवश्यकता है। रेडियो स्टेशनों पर इन्हीं क्रमोन्नत तरंगों द्वारा ईथर में ध्वनि की लहरें पैदा की जाती हैं। ये ही लहरें एरियल से होकर रेडियो के परदे पर कम्पन पैदा करती हैं और पुनः ध्वनि में बदल जाती हैं।

रेडियो की उपयोगिता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। संगीत, वाद्य, शिक्षा, व्यायाम, कविता, संवाद, समाचार सम्बन्धी अनेक कार्यक्रम रेडियो से प्रसारित होते हैं। भविष्य में रेडियो से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। सम्भव है इसकी विद्युत-तरंगों से प्रकाश हो, रेलगाड़ियाँ चलें। धरती पर बैठे-बैठे चन्द्रलोक के मनुष्यों से विचारों का आदान-प्रदान भी इसके द्वारा निकट भविष्य में हो सकता है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) रेडियो आज सर्वाधिक लोकप्रिय आविष्कार क्यों है? (२) ईथर क्या है? (३) क्षण भर में समाचार दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर पर कैसे पहुँच जाता है? (४) रेडियो की क्या उपयोगिता है?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट करो—ईथर, प्रेषक-यंत्र, चुम्बकीय तरंगें, एरियल। (२) रेडियो का महत्त्व अपनी भाषा में लिखो।

व्याकरण—प्रस्तुत पाठ के प्रथम अनुच्छेद के "भाषण न्यूयार्क में..." से प्रारम्भ और "उठा सकते हैं" से अन्त होनेवाले वाक्य का वाक्य-विश्लेषण करो।

---

२२. अकबरी लोटा

(परिचय—इस कहानी के लेखक श्री अन्नपूर्णानन्द जी हास्यरस की रचनाएँ करने में सिद्धहस्त हैं। इनका हास्य शिष्ट और मर्यादित होता है। भाषा चलती और चुलबुली होती है, जिससे व्यंग्य विनोद की सृष्टि में अधिक सहायता मिलती है। 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला' और 'महाकवि चच्चा' इनकी हास्यरस की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।)

प्रवेशक—पुरानी ऐतिहासिक वस्तुओं के संग्रह का फैशन चल पड़ा है। जो लोग इन वस्तुओं की पहचान करने में असमर्थ हैं वे भी दूसरों को दिखाने के लिए ऐतिहासिक वस्तु के नाम पर अवास्तविक वस्तु का संग्रह कर लेते हैं। इसमें एक ऐसे ही ऐतिहासिक वस्तुओं के प्रेमी पर व्यंग्य है।

उल्का काशीवास सांगोपांग तन्मयता

लाला झाऊलाल को खाने-पीने की कमी नहीं थी। काशी के ठठेरी बाजार में मकान था। नीचे की दूकानों से लगभग एक सौ रुपया मासिक किराया उतर आता था। कच्चे-बच्चे अभी थे नहीं, केवल दो प्राणी का व्यय था। अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे। पर ढाई सौ रुपये तो एक साथ आँख सेंकने के लिए भी न मिलते थे।

इसलिए जब इनकी पत्नी एक दिन एकाएक ढाई सौ रुपये माँग बैठी तब इनका जी एक बार जोर से सनसनाया और फिर बैठ गया। जान पड़ा कि कोई बुल्ला है जो बिलाने जा रहा है। उनकी यह दशा देखकर उनकी पत्नी ने कहा, "डरिये मत, आप देने में असमर्थ हों तो मैं अपने भाई से माँग लूँ।"

लाला झाऊलाल इस मीठी मार से तिलमिला उठे। उन्होंने किंचित रोष के साथ कहा, "अजी हटो, ढाई सौ रुपये के लिए भाई से भीख माँगोगी? मुझसे ले लेना।"

"परन्तु मुझे इसी जीवन में चाहिये।"

"अजी इसी सप्ताह में ले लेना।"

"सप्ताह से आपका तात्पर्य सात दिन से है या सात वर्ष से?"

लाला झाऊलाल ने रोष के साथ खड़े होते हुए कहा, "आज से सातवें दिन मुझसे ढाई सौ रुपये ले लेना।"

"पुरुष की एक बात!"

"हाँ जी, हाँ! पुरुष की एक बात!"

किन्तु जब चार दिन ज्यों-त्यों में यों ही बीत गये और रुपयों का कोई प्रबन्ध न हो सका, तब उन्हें चिन्ता होने लगी। प्रश्न अपनी प्रतिष्ठा का था, अपने ही घर में अपनी साख का था। यह पहली बार उसने मुँह खोलकर कुछ रुपये माँगे थे। अब यदि पूँछ दबाकर निकल भागता हूँ तो फिर पत्नी को क्या मुँह दिखलाऊँगा।

एक दिन और बीता। पाँचवें दिन घबराकर उन्होंने पण्डित बिलवासी मिश्र को अपनी विपदा सुनायी। संयोग कुछ ऐसा बिगड़ा था कि बिलवासीजी भी उस समय निरे खुक्ख थे। उन्होंने कहा कि मेरे पास है तो नहीं, पर मैं कहीं से माँग-जाँचकर लाने का प्रयत्न करूँगा और कल साँझ को तुमसे घर पर मिलूँगा।

वही साँझ आज थी। सप्ताह का अन्तिम दिन। कल ढाई सौ रुपया या तो गिन देना है या सारी हेकड़ी से हाथ धोना है। अभी पण्डित बिलवासी मिश्र भी नहीं आये। यदि न आये तो? कहीं वे रुपये का प्रबन्ध न कर सके तो?

इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए लाला झाऊलाल छत पर टहल रहे थे। कुछ प्यास जान पड़ी। उन्होंने नौकर को पुकारा। नौकर नहीं था। इससे उनकी पत्नी ही पानी लेकर आयी।

लाला झाऊलाल मुँडेरे के पास खड़े होकर पानी पीने लगे। वे दो घूँट ही पी पाये होंगे कि न जाने कैसे उनका हाथ हिल उठा और लोटा हाथ से छूट गया।

लोटे ने न दाहिने देखा न बायें। वह नीचे गली की ओर चल पड़ा। अपने वेग में उल्का को लजाता हुआ वह आँखों से ओझल हो गया। किसी युग में न्यूटन ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की खोज की थी। कहना न होगा कि यह सारी शक्ति इस समय लोटे के पक्ष में थी।

लाला झाऊलाल को काटो तो बदन में रक्त नहीं। ठठेरी बाजार ऐसी चलती हुई गली में ऊँचे तिखंडे से, भरे हुए लोटे का गिरना हँसी खेल नहीं। यह लोटा न जाने किस अनधिकारी के खोपड़े पर काशीवास का सन्देश लेकर पहुँचेगा। कुछ हुआ भी ऐसा ही। गली में बहुत हल्ला उठा। लाला झाऊलाल जब तक दौड़कर नीचे उतरे तब तक भारी भीड़ उनके आँगन में घुस आयी।

लाला झाऊलाल ने देखा कि भीड़ में प्रधान पात्र अँगरेज है। वह नखशिख से भींगा हुआ है और अपने एक पैर को हाथ से सहलाता हुआ दूसरे पैर पर नाच रहा है। उसी के पास उस अपराधी लोटे को भी देखकर लाला झाऊलाल जी ने तुरन्त स्थिति को समझ लिया।

इसी समय पंडित बिलवासी मिश्र भीड़ को चीरते हुए आँगन में आते दिखलाई पड़े। उन्होंने आते ही उस अँगरेज को छोड़कर और सबको निकाल बाहर किया। फिर एक कुर्सी आँगन में रखकर उन्होंने साहब से कहा—"आपके पैर में जान पड़ता है कुछ चोट आयी है। आप कुर्सी पर बैठ जाइए।"

साहब बिलवासीजी को धन्यवाद देते हुए बैठ गये और लाला झाऊलाल की ओर संकेत करके बोले—"आप उसको जानते हैं ?"

"नहीं! मैं ऐसे लोगों को जानना भी नहीं चाहता जो निरीह राह चलतों पर लोटे से वार करें।"

"मेरी समझ में यह बड़ा भारी पागल है।"

"नहीं, मेरी समझ में यह बड़ा अपराधी है।"

लाला झाऊलाल यह कुछ समझ नहीं पाते थे कि बिलवासीजी को इस समय हो क्या गया है।

साहब ने बिलवासीजी से पूछा—"तो अब क्या करना चाहिए?"

"थाने में उसकी रपट कर दीजिए, जिससे यह तुरन्त पकड़ लिया जाय।"

"थाना है कहाँ?"

"पास ही है। चलिए मैं बतलाऊँ।"

"चलिए।"

"अभी चलो। आप कहें तो पहले मैं इस लोटे को इससे मोल ले लूँ। क्यों जी बेचोगे? पचास रुपये तक दे सकता हूँ।"

लाला झाऊलाल तो चुप रहे। इस पर साहब ने पूछा—"इस रद्दी लोटे का पचास रुपया आप क्यों दे रहे हैं?"

बिलवासी—"आप इस लोटे को रद्दी बताते हैं? आश्चर्य! मैं तो आपको जानकार और सुशिक्षित समझता था।"

साहब—"बात क्या है, कुछ बताइए भी?"

बिलवासी—"यह जनाब! एक ऐतिहासिक लोटा जान पड़ता है। जान क्या पड़ता है मुझे पूरा विश्वास है, यह वह प्रसिद्ध अकबरी लोटा है, जिसकी खोज में संसार भर के संग्रहालय व्याकुल हैं।"

साहब—"यह बात!"

बिलवासी—"जी हाँ! सोलहवीं शताब्दी की बात है। बादशाह हुमायूँ शेरशाह से हारकर भागा था और सिन्ध के मरुस्थल में मारा-मारा फिर रहा था। प्यास से उसके प्राण निकल रहे थे। उस समय किसी ब्राह्मण ने इसी से पानी पिलाकर उसके प्राण

बचाये थे। जब अकबर दिल्लीश्वर हुआ तब उसने उस ब्राह्मण को ढुँढ़वाकर उससे इस लोटे को ले लिया। बदले में उसे इसी प्रकार के दस सोने के लोटे प्रदान किये। यह लोटा सम्राट् अकबर को बहुत प्यारा था। इसी से इसका नाम 'अकबरी लोटा' पड़ा। सन् '५७ तक इसके शाही घराने में ही रहने का पता चलता है। इसके पीछे इसका लोप हो गया। न जाने यह लोटा इसके पास कैसे आया! संग्रहालयवालों को पता चले तो मुँहमाँगे दाम देकर मोल ले जायँ।"

इस विवरण को सुनते-सुनते ही साहब की आँखें लोभ और आश्चर्य से कौड़ी के आकार से बढ़कर पकौड़ी के आकार की हो गयीं। उसने बिलवासी जी से पूछा—"तो आप इस लोटे को लेकर क्या करिएगा? मुझे पुरानी और ऐतिहासिक चीजों के संग्रह करने का चाव है। जिस समय यह लोटा मेरे ऊपर गिरा उस समय मैं उस दूकान से पीतल की कुछ पुरानी मूर्तियाँ ले रहा था।"

"जो कुछ हो, लोटा मैं ही मोल लूँगा।"

"वाह आप कैसे लेंगे? मैं लूँगा मेरा अधिकार है।"

"अधिकार है?"

"अवश्य। यह बतलाइए इस लोटे के पानी से आपने स्नान किया या मैंने?"

"आपने।"

"अँगूठा उसने आपका भुरता किया या मेरा?"

"आपका।"

"इसीलिए इसे मोल लेने का अधिकार भी मेरा है।"

"यह सब झोल है। दाम लगाइए, जो अधिक दे वह ले जाय।"

"यही सही। आप उसका पचास रुपया लगा रहे थे। मैं सौ देता हूँ।"

"मैं डेढ़ सौ देता हूँ।"

"मैं दो सौ देता हूँ।"

"अजी मैं ढाई सौ देता हूँ।" यह कह बिल्वासीजी ने ढाई सौ के नोट झाऊलाल के आगे फेंक दिये।

साहब को भी ताव आ गया। उसने कहा—"आप ढाई सौ देते हैं तो मैं पाँच सौ देता हूँ! अब चलिए?"

बिल्वासीजी दुःख के साथ अपने रुपये उठाने लगे। साहब की ओर देखकर उन्होंने कहा, "लोटा आपका हुआ, ले जाइये। मेरे पास ढाई सौ से अधिक है नहीं।"

यह सुनना था कि साहब के मुँह पर प्रसन्नता की कूँची फिर गयी। उसने झपटकर लोटा उठा लिया और बोला—"अब मैं हँसता हुआ अपने देश लौटूँगा।"

साहब ने झाऊलाल को पाँच सौ रुपये देकर अपनी राह ली।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) लाला झाऊलाल की स्त्री ने लाला से क्या माँगा? (२) लाला के मन में क्यों चिन्ता होने लगी? (३) बिल्वासी ने साहब से रुपये कैसे ऐंठे?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखो और इनका प्रयोग स्वरचित वाक्यों में करो—काटो तो रक्त नहीं। मुँहमाँगा। फूटी आँख न भाना। मारा-मारा फिरना। (२) उल्का, काशीवास के अर्थ बताओ। (३) मान लो तुम ठठेरी गली से जा रहे थे। तुम्हारे सामने लोटा अँगरेज के ऊपर गिरा। सारी घटना का आँखों देखा वर्णन करो।

---

२३. वीरों का कैसा हो वसंत

(परिचय—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री तथा मध्यप्रान्त की एक कर्मठ राजनीतिक कार्यकर्त्री थीं। आपकी कविता राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत रहती है। भाषा और भावों की सादगी आपकी कविता की विशेषता है।)

प्रवेशक—इस कविता में अतीत के कुछ वीरों और ऐतिहासिक स्थानों का स्मरण दिलाकर कोई देशवासियों को जगाना चाहता है।

दिग्-दिगन्त मारू ज्वलन्त
वीरों का कैसा हो वसन्त?
आ रही हिमाचल से पुकार
है उदधि गरजता बार-बार
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वसु-वसुधा पुलकित अंग-अंग
है वीर वेश में किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आये हैं आदि अन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझमें क्यों लगी आग ?
ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत ?
हल्दी-घाटी के शिलाखंड,
ऐ दुर्ग सिंहगढ़ के प्रचन्ड,
राणा नाना का कर घमंड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) हिमालय, धरती और समुद्र क्या पूछ रहे हैं ? (२) कुरुक्षेत्र को क्यों जगाया जा रहा है ? (३) हल्दीघाटी के शिलाखंडों की क्या स्मृतियाँ हैं ? (४) नाना साहब कौन थे ?

लेखनार्थ—(१) 'मिलने आये हैं आदि अन्त' का भाव-सौंदर्य स्पष्ट करो। (२) इस कविता में तुम्हें कौन छन्द सबसे सुन्दर लगा ?

आदेश—सुभद्राकुमारी चौहान की 'मुकुल' पुस्तक पुस्तकालय से लेकर पढ़ो।

---

२४. कबड्डी

प्रवेशक—स्वस्थ रहना जीवन के लिए पहली आवश्यकता है। टहलना, दौड़ना, दंड-व्यायाम की अपेक्षा खेल खेलना अधिक मनोरंजक तथा लाभदायक है। खेल के नाम पर तो विद्यार्थियों के मुँह में पानी आ जाता है। पश्चिमी खेलों की चकाचौंध में देशी खेलों का कोई

महत्त्व ही नहीं रह गया है। हमारे देशी खेल पश्चिमी खेलों की अपेक्षा सस्ते और लाभप्रद हैं। कबड्डी उत्तरप्रदेश का बहुत लोकप्रिय खेल है। प्रस्तुत निबन्ध में इसी के महत्त्व की चर्चा की गयी है।

उपकरण व्यय-सुलभ, तिरोभाव यूनीफार्म

शरीर सभी धर्मों का साधन है। स्वस्थावस्था में हम कोई काम सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। शारीरिक परिश्रम करनेवाले प्रायः स्वस्थ दिखाई पड़ते हैं। किसान और मजदूरों की शारीरिक गठन तुन्दिल रईसों और उनके लाड़ले पुत्रों से कहीं अच्छी होती है। इसका कारण यह है कि किसान-मजदूर इतना परिश्रम करते हैं कि उनका रूखा-सूखा भोजन भी अच्छी तरह पच जाता है। सेठों और रईसों को भोजन पचाने के लिये हिंग्वाष्टक चूर्ण सेवन करना पड़ता है। बहुधा देखा जाता है कि विद्यानुरागी स्वास्थ्य की ओर से उदासीन-से रहते हैं। मालूम होता है, वे अपना समस्त अनुराग विद्या को सौंप देते हैं, स्वास्थ्य के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। विद्यार्थियों में भी अधिकांश की यही दशा है। स्वास्थ्य का मूल्य चुकाकर विद्यार्जन भयानक भूल है। केवल पुस्तकें पढ़कर मनोरंजन करना हितकर नहीं है। शारीरिक स्वास्थ्य की उपेक्षा करने पर मस्तिष्क भी दुर्बल हो जाता है। जब स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है तब पढ़ने से भी विरक्ति हो जाती है। फिर तो धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।

टहलने को गांधीजी कसरतों का राजा कहते हैं। किन्तु यह बूढ़ों की कसरत है, बालकों की नहीं। टहलने में मन एकाग्र नहीं होता, पहले की चिन्ताएँ बनी रहती हैं। अवयवों पर पूरा जोर भी नहीं पड़ता। दौड़ना टहलने से अच्छा है। किन्तु इससे शीघ्र थकान आ जाती है और मनोरंजन नहीं होता। स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये खेल सबसे उपयुक्त साधन है। खेल में अधिक रुचि दिखलाने के कारण कुछ बड़े-बूढ़े तुम्हारी खिलाड़ियों में गणना करके नाक-भौं

सिकोड़ सकते हैं, किन्तु स्वस्थ रहकर किताबी कीड़ों को भी पछाड़ा जा सकता है यदि खेलने और पढ़ने में समान रुचि रहे।

हाकी, क्रिकेट, फुटबाल कोई भी खेल खेल सकते हो। ये खेल गाँवों में सरलतापूर्वक नहीं खेले जा सकते। गाँव-शहर सभी स्थानों के बालकों, वयस्कों के लिए कबड्डी बड़ा सरल, मनोरंजक और स्वास्थ्य-वर्धक खेल है। हाकी या क्रिकेट की भाँति कबड्डी खेलने के लिए बहुत से उपकरण एकत्र नहीं करने पड़ते। दूसरे खेलों की भाँति यह व्ययसाध्य भी नहीं है। भारत ऐसे देश के लिए इस तरह के खेल बहुत उपयुक्त हैं। इस खेल के लिए नियमों का बहुत बड़ा जाल भी नहीं है, जिसमें उलझकर मूल खेल का महत्त्व भूल जाता है।

स्वच्छ और खुली हवा में अपनी मित्रमण्डली लेकर चले जाइए। वहाँ कबड्डी खेल लीजिए। अन्य खेलों की भाँति कबड्डी में भी दो पक्ष होते हैं। प्रत्येक पक्ष में कितने लोग रहें इसका कोई नियम नहीं है। फिर भी खेल समाप्त करने के लिये प्रति पक्ष में सात-आठ व्यक्ति से अधिक न हों तो अच्छा है। दोनों पक्षों के बीच में एक सीमा-रेखा खींच दो। बस, तुम्हारा खेल आरम्भ हो जायगा। देशी वस्त्रों की भाँति देशी खेल भी विदेशी वस्त्रों और विदेशी खेलों की अपेक्षा अल्पव्यय-सुलभ और अधिक लाभदायक होते हैं। इनके लिए यूनीफार्म की आवश्यकता नहीं। एक गंजी, धोती या हाफपैंट पर्याप्त है।

कबड्डी में तेज दौड़ना पड़ता है, इससे रक्त का प्रवाह चारों ओर फैल जाता है। शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। पुट्ठे और पिंडलियों पर खूब जोर पड़ता है। हाथ भी हिलाना पड़ता है। आगे झुकने और खड़े होने से रीढ़ का भी व्यायाम हो जाता है। कबड्डी के खेल में साँस बाँधनी पड़ती है। बाहर साँस फेंकने के बाद खिलाड़ी गहरी साँस लेता है। इससे फेफड़े का व्यायाम अपने-आप हो जाता है।

टहलते समय मस्तिष्क में चिन्ता रहती है किन्तु खेल खेलते समय चिन्ता का तिरोभाव हो जाता है – कम से कम खेलते समय तक के लिए मन में चिन्ता नहीं फटकती। मन पूर्ण रूप से एकाग्र होकर खेल में संलग्न रहता है।

कबड्डी में भी प्रत्येक पक्ष का नेता होता है। नेता के कथनानुसार ही खिलाड़ियों को कार्य करना चाहिये। यद्यपि आज की प्रचलित पद्धति के अनुसार नेता का कबड्डी में अधिक ध्यान नहीं रखा जाता तथापि उसके महत्व की पुनःस्थापना से कबड्डी का महत्व बढ़ जायगा। हाकी, क्रिकेट आदि खेलों की अनुशासन-प्रियता यहाँ भी आ जायगी।

कबड्डी से मिल-जुलकर काम करने की प्रेरणा मिलती है। जिस पक्ष में सहयोग की भावना जितनी अधिक रहेगी वह पक्ष खेल में उतनी ही अधिक सफलता भी प्राप्त करेगा। पर पक्ष का खिलाड़ी चाहे कितना ही बलवान् क्यों न हो दूसरे पक्ष के तीन-चार निर्बल खिलाड़ी उसे पकड़ सकते हैं। इस प्रकार खिलाड़ियों में दूसरों की सहायता करने की भावना भी जाग्रत हो जाती है। स्वतन्त्र देश के विद्यार्थियों को चरित्र-निर्माण की ओर ध्यान देना चाहिए। खेलों से चरित्र-निर्माण के कार्य में बड़ी सहायता मिलती है। अपने को सौंपे गये कार्य को पूरी ईमानदारी से निभाना सच्चे खिलाड़ी का कर्तव्य है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) मजदूरों का स्वास्थ्य रईसों से क्यों अच्छा रहता है ? (२) टहलने की अपेक्षा खेल क्यों अच्छा है ? (३) भारत ऐसे देश के लिए देशी खेल क्यों अच्छा है ?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित मिलते-जुलते शब्दों के कार्यों को

बताओ—उपेक्षा-अपेक्षा, उपयुक्त-उपर्युक्त, रक्त-विरक्त । (२) कबड्डी के किसी उस खेल का वर्णन करो जिसमें तुम स्वयम् सम्मिलित थे ।

व्याकरण—सन्धि-विग्रह करो और नियम बताओ—

स्वस्थावस्था, मनोरंजक, पुनःस्थापना, प्रत्येक ।

---

२५. वनपथ में राम

(परिचय—भला ऐसा कौन हिन्दी-भाषा-भाषी होगा जिसने गोस्वामी तुलसीदास का नाम न सुना हो । वे भक्त, महात्मा और महाकवि हो गये हैं । उनका रामचरितमानस इतना अधिक लोकप्रिय हुआ है कि उत्तर भारत में झोपड़ी से लेकर महलों तक इसका प्रचार है । विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली आदि इनके अन्य ग्रन्थ हैं । ब्रजभाषा और अवधी दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार है । इस महाकवि की तुलना में केवल सूरदास का नाम लिया जा सकता है ।)

प्रवेशक—राम, लक्ष्मण और सीता तीनों वन में जा रहे हैं । वन के निकट के गाँव की स्त्रियाँ उनकी सुन्दरता और भोलापन देखकर उनके पास आती हैं और सीताजी से स्त्रियोचित मधुर प्रश्न पूछती हैं ।

बिलग मरकत मनोज पिक

सीता लखन सहित रघुराई । गांव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर-नारी । चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी ॥
राम - लखन - सिय-रूप निहारी । पाइ नयन-फल होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा । सब भए मगन देखि दोउ बीरा ॥

बरनि न जाइ दसा तिन केरी। लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥
रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

दोहा—एक देखि बट-छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गँवाइय छिनक स्रम, गवनब अबहिं कि प्रात॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील बिसेखी॥
जानी स्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंब कीन्ह बटछाहीं॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मन लोभा॥
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुखचंद्र चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तन सोहा। देखत कोटि मदन मन मोहा॥
दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जी के॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं करकमलन्ह धनुतीरा॥

दोहा—जटा मुकुट सीसन्ह सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद-परब-बिधु-बदन बर, लसत स्वेदकन जाल॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम लखन सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥
थके नारि-नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥
सीय समीप ग्राम तिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बार-बार सब लागहिं पाए। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाए॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभाव कछु पूछत डरहीं॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलग न मानबि जानि गँवारी॥
राजकुँवर दोउ सुघर सलोने। इन्ह ते लहि दुति मरकत लोने॥

दोहा—स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुषमा-अयन।
सरद-सरबरी नाथ मुख, सरद-सरोरुह नयन॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महँ सकुचानी॥
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुं सँकोच सकुचति बर बरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन-मंजु तिरीछे नयननि। निजपति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि॥
भईं मुदित सब ग्राम-बधूटी। रंकन्ह रायरासि जनु लूटी॥
दोहा—अति सप्रेम सिय पाय परि, बहु बिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि-सीस॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) गाँव की स्त्रियाँ राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर क्यों प्रसन्न हुईं ? (२) वट की छाया में रामचन्द्रजी क्यों रुक गये ? (३) गाँव की स्त्रियों ने सीताजी से क्या पूछा ? सीताजी ने उनको क्या उत्तर दिया ?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ लिखो—बिलग, मरकत, किसोर, सरद-सरोरुह। (२) इनके तत्सम रूप लिखो—सिख, छिनक, बिसाल, सुभाव। (३) 'दुहुँ सँकोच सकुचति बर बरनी' का भाव-सौंदर्य स्पष्ट करो।

अलंकार—'वर का चन्द्र-मुख देखकर स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं।', यहाँ चन्द्र-मुख में रूपक अलंकार है। रूपक अलंकार वहाँ होता है जहाँ उपमेय (जो उपमा के योग्य हो) और उपमान (जिससे उपमा दी जाय) को एक ही कहा जाय। उपर्युक्त कविता में रूपक अलंकार ढूँढो।

—

२६. हमारा राजचिन्ह

गरुड़ध्वज नन्दी धर्मचक्र संस्कृति

प्रवेशक—प्रस्तुत लेख में भारतीय लोकतन्त्र के राजचिह्न का महत्त्व बतलाया गया है।

आज भारतवर्ष की परतन्त्रता की लौह-शृंखला टूट गयी है। चारों ओर आलोक बिखेरती हुई उषा नील क्षितिज से झाँक रही है। अन्धकार का पता नहीं है। चिड़िया प्रभाती गा रही हैं। बालसूर्य अपनी रश्मियों से मंगल कुंकुम बरसा रहा है। हिन्द महासागर की लहरों के गीत में नया स्वर है और हिमालय अपनी जड़ता खो तनकर खड़ा हो गया है। भारतीय सीमा के इस चिरनवीन प्रहरी में पूर्ण सतर्कता आ गयी है।

यद्यपि हम १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हो चुके थे तथापि कहने के लिए ब्रिटेन के सम्राट के अधीन ही थे। हमारा विधान बनने को शेष था। सरकारी भवनों पर ब्रिटेनी ताज का चिह्न था। २६ जनवरी १९५० को हमारा विधान लागू हो गया। भारतवर्ष ने अपने लोकतन्त्र होने की घोषणा की। गवर्नर-जनरल की जगह देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। अब यहाँ ब्रिटेन का राजचिह्न नहीं रह गया। हमारा अपना राजचिह्न बन गया है।

विभिन्न कालों में भारतवर्ष के राजाओं ने भिन्न-भिन्न राजचिह्न रखे। मौर्य राजाओं का राजचिह्न मेरु पर्वत था। सम्भवतः यह गुरुता का बोधक था। गुप्त राजाओं का राजचिन्ह गरुड़ध्वज था। गुप्त राजा वैष्णव थे अतः उन्होंने भगवान् के वाहन गरुड़ को अपना राजचिह्न बनाया। कुछ शैव राजाओं ने नन्दी को अपना राजचिह्न माना। नन्दी शिव का वाहन है अतः शैवों ने अपने राजचिह्न में नन्दी को स्थान दिया।

इतिहास में आज की तरह भारतवर्ष शायद ही कभी राजनीतिक

एकसूत्रता में बँधा हो। अतः आज के भारत को एक ऐसे राजचिह्न की आवश्यकता थी जो इसकी नीति और एकता का सूचक हो। इसके लिए हमारे विचारकों और राजनीतिज्ञों ने सारनाथ के अशोक-स्तम्भ के शीर्ष-सिंह को, जिसके नीचे चक्र भी अंकित है, अपना राजचिह्न बनाया।

हमारी स्वाधीनता की लड़ाई अहिंसात्मक रही है। हमारा देश सर्वदा से अधिक से अधिक अहिंसक और धर्मसहिष्णु रहा है। इसलिए राजचिह्न के लिए अशोक-स्तम्भ का शीर्षस्थ सिंह सर्वथा उपयुक्त है।

इस चिह्न के शीर्ष भाग में तीन सिंहों की मूर्तियाँ हैं। बीच के सिंह के ठीक नीचे धर्मचक्र है। धर्मचक्र के दायें एक बैल और बायें एक अश्व है। इस चिह्न के नीचे नागरी लिपि में 'सत्यमेव जयते' लिखा हुआ है। इसका अर्थ है, 'सत्य की ही विजय होती है'। सत्य और अहिंसा महात्मा जी के मूल सिद्धान्त थे। इस राजचिह्न से इन दोनों का बोध हो जाता है। इन सिद्धान्तों से संसार के सभी धर्मावलम्बी सहमत हैं।

यह राजचिह्न भारत की प्राचीन संस्कृति और कला का भी प्रतीक है। विश्वभ्रातृत्व और विश्वशान्ति भारतीय लोकतन्त्र का प्रमुख उद्देश्य है। यह राजचिह्न भी उसी का द्योतक है। धर्मचक्र से न्यायचक्र का बोध होता है। संक्षेप में यह राजचिह्न हमारी कला, संस्कृति, सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहनशीलता आदि सभी बातों का प्रतीक है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) आज चारों ओर मंगलगान क्यों हो रहा है? (२) गुप्त राजाओं ने गरुड़ध्वज को अपना राजचिह्न क्यों माना था? (३) आज स्वतन्त्र भारत का राजचिह्न क्या है? (४) हमारे राजचिह्न का क्या महत्त्व है?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताओ—धर्मचक्र, संस्कृति, सिद्धान्त विश्वभ्रातृत्व। (२) संस्कृति-संस्कृत, कला-कली, प्राचीन-अर्वाचीन के अर्थों का अन्तर स्पष्ट करो।

व्याकरण—समास बताओ—राजचिह्न, कला-संस्कृति, गरुड़ध्वज।

—:०:—

२७. हिमालय के प्रति

(परिचय—इस कविता के रचयिता के परिचय के लिए दूसरे पाठ के लेखक का परिचय देखो।)

प्रवेशक—हिमालय को तपस्वी मानकर उसे अपने देश की दशा देखने को कहा जा रहा है। कवि हिमालय से कुछ कहने के बहाने देशवासियों को जगाना चाहता है।

नयनोन्मेष क्रान्त शैलराट् कुहा अम्बुधि अन्तस्तल

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट।।
पौरुष की पुंजी-भूत ज्वाल'
मेरी जननी के हिम-किरीट।।

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त।।
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान।
निस्सीम व्योम में तान रहा।
युग से किस महिमा का वितान।।

कैसी अखंड यह चिर-समाधि
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान
तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल-समस्या का निदान

उलझन का कैसा विषम जाल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ मौन तपस्या-लीन यती
पल-भर को तो कर दृगोन्मेष
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश

सुख सिंधु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिय-धार
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार

जिसके द्वारों पर खड़ा क्लान्त
सीमापति ! तू ने की पुकार
'पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार ।'

उस पुण्य-भूमि पर आज तपी
रे आन पड़ा संकट कराल
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
हँस रहे चतुर्दिक विविध व्याल !

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियाँ लुट गयीं मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष

तू ध्यानमग्न हो रहा, उधर।
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।।

कितनी द्रुपदा के बाल खुले।
कितनी कलियों का अन्त हुआ।
कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ।
कितने दिन ज्वाल-वसन्त हुआ।।

पूछे सिकता-कण से हिमपति।
तेरा वह राजस्थान कहाँ।।
वन-वन स्वतन्त्रता दीप लिए।
फिरनेवाला बलवान कहाँ।।

तू पूछ अवध से राम कहाँ।
वृन्दा बोलो, घनश्याम कहाँ।
ओ मगध कहाँ मेरे अशोक।
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ।।

री कपिलवस्तु ! कह बुद्धदेव।
के वे मंगल उपदेश कहाँ।।
तिब्बत, इरान, जापान, चीन।
तक गये हुए संदेश कहाँ।।

वैशाली के भग्नावशेष से।
पूछ लिच्छवी शान कहाँ।।
ओ री उदास गंडकी ! बता।
विद्यापति कवि के गान कहाँ।।

तू मौन त्याग कर पूछ आज।
बंगाल नवाबी ताज कहाँ।
भारत का अन्तिम ज्योति-नयन।
मेरा प्यारा 'शीराज़' कहाँ।।

तू तरुण देश से पूछ अरे।
गूँजा कैसा यह ध्वंस-राग।
अम्बुधि-अन्तस्तल बीच छिपी।
यह सुलग रही है कौन आग।।

प्राची के प्रांगण बीच देख।
जल रहा स्वर्ण-युग-अग्नि-ज्वाल।
तू सिंहनाद कर जाग यती।
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !।

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ।
जाने दो उनको स्वर्ग धीर।।
पर फिरा हमें गाँडीव, गदा।
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।।

कह दे शंकर से आज करें।
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार।।
सारे भारत में गूँज उठे।
हर-हर बम का फिर महोच्चार।।

ले अँगड़ाई उठ हिले धरा।
कर निज विराट स्वर में निनाद।

तू शैलराट् ! हुँकार भरे।
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।।

तू मौन त्याग, कर सिंहनाद।
रे तपी ! आज तप का न काल।।
नवयुग - शंखध्वनि जगा रही।
तू जाग - जाग मेरे विशाल ! ।

मेरी जननी के हिम - किरीट ।
मेरे भारत के दिव्य भाल।।
नवयुग - शंख - ध्वनि जगा रही।
जागो नगपति ! जागो विशाल ! ।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) कवि हिमालय से किन-किन पुराने स्थानों और व्यक्तियों के सम्बन्ध में पूछता है ? (२) शीराज कौन था ? उसके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो ? (३) कवि युधिष्ठिर को क्यों नहीं रोकना चाहता है ? (४) वह अर्जुन और भीम को क्यों लौटा लेना चाहता है ?

लेखनार्थ—(१) अर्जुन के पाँच अन्य नाम बताओ । (२) 'तू शैल-राट् ! हुँकार भरे फट जाय कुहा, भागे प्रमाद'—में जो ओज है उसे स्पष्ट करो ।

आदेश—इस कविता का जो अंश तुम्हें अच्छा लगे उसे कंठस्थ करो ।

—:*:—

२८. रेडक्रास

प्रवेशक—रेडक्रास समाज-सेवा की अन्तरराष्ट्रीय संस्था है। युद्ध में आहत सैनिकों, बाढ़, अग्नि, भूकम्प-पीड़ितों आदि की सेवा में संलग्न रहना इस संस्था का कर्त्तव्य है। देश, धर्म, जाति की संकीर्ण सीमाओं में न बँधकर इस संस्था का धर्म पीड़ित मानवता की सेवा करना है।

मानवता	आकस्मिक	संक्रामक
आचरित	धातृ	विधायक

क्रीमिया के युद्ध में फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने घायल और रोगी सैनिकों की बड़े परिश्रम से सेवा की। एक दूसरे युद्ध में स्विटजरलैंड के निवासी हेनरी ने घायल सैनिकों की परिचर्या की और युद्धकाल में सेवा का कार्य व्यापक रूप से करने के लिये एक बड़ी संस्था की स्थापना की आवश्यकता बतलायी। १८६३ ई० में जेनेवा में छोटे-बड़े सोलह देशों के प्रतिनिधियों ने रेडक्रास नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का चिह्न ईसाइयों का धर्मचिह्न है। उसे लाल रंग में रंग दिया जाता है। इसी से इसे रेडक्रास कहते हैं। अपने शहरों में बड़ी-बड़ी मोटरों पर शायद तुम लोगों ने रेडक्रास का लाल चिन्ह देखा है। ये मोटर गाड़ियाँ इसी संस्था की हैं।

रेडक्रास संस्था का प्रमुख ध्येय पीड़ित मानवता की सेवा करना है। यह देश, धर्म के संकुचित घेरे से निकलकर समस्त विश्व-जन-कल्याण के लिए कार्य करती है। अन्तरराष्ट्रीय नियम के अनुसार युद्ध-काल में रेडक्रास के विमानों, मोटरों तथा अन्य सवारियों पर आक्रमणात्मक कार्यवाही नहीं की जा सकती। शत्रु के हाथ में पड़े हुए सैनिकों को भी यथाशक्ति सुख-सुविधा पहुँचाना, उनका समाचार उनके घर और देश भेजना इस संस्था का कार्य है।

यद्यपि इस संस्था का जन्म युद्ध में आहत सैनिकों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए ही हुआ तथापि इसकी सेवा का कार्य बहुत व्यापक है।

आकस्मिक दैवी प्रकोपों—भूचाल, बाढ़, आग, संक्रामक बीमारियों—से पीड़ित व्यक्तियों की सहायता करना यह संस्था अपना कर्त्तव्य समझती है। सार्वजनिक मेलों में यह स्वयंसेवक भेजती है, वहाँ पर छोटे-मोटे औषधालयों का प्रबन्ध करती है। छाया-चित्रों के द्वारा यह संस्था स्वास्थ्य और रहन-सहन सम्बन्धी शिक्षा भी देती है।

छोटे-छोटे बालकों में सेवा की भावना भरने के लिये प्रत्येक देश में अनेक स्थानों पर रेडक्रास-समितियों का संघटन भी किया गया है। इस प्रकार के संघटन विद्यालयों में किये गये हैं। विद्यार्थियों का मस्तिष्क कच्ची मिट्टी के समान है। कुशल कुम्हार उसे चाहे जो रूप दे सकता है। अगर लड़कपन में ही छात्रों में देश, धर्म, जाति की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर लोक-सेवा की भावना जागरित हो जाय तो मानवता का बड़ा कल्याण हो। लघु रेडक्रास-समितियों का लक्ष्य लोगों की सेवा करना, आरोग्य रहना तथा दूसरे देशों के लोगों से मैत्री स्थापित करना होता है। बालकों को चोट लगने पर पट्टी बाँधने और साधारण उपचार करने की प्राथमिक सहायता की शिक्षा दी जाती है। बालिकाओं को रोगियों की देख-भाल करने की मातृ-शिक्षा तथा शिशु-पालन की विधि बतलायी जाती है।

इस प्रकार संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त करके छात्र अपने गाँव में समाज सेवा का प्रशंसनीय कार्य कर सकते हैं। लोगों को स्वच्छता से रहने के लाभ और संक्रामक बीमारियों से बचने के उपाय बतला सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिये जत्थे बनाकर जा सकते हैं। महामारी तथा अन्य संक्रामक रोगों में लोगों की सहायता कर सकते हैं। बालकों का साहस और सेवा-भाव देखकर गाँव के युवक अपने आप उनके साथ हो लेंगे।

बड़े होने पर ये ही बालक देश के नेता और कलाकार होंगे। इनकी भावनाएँ जितनी उदार और व्यापक होंगी देश को उतना ही

बड़ा नेता या कलाकार मिलेगा। ये अपनी वक्तृताओं, अपने आचरित अनुभवों से देश की भावनाओं में परिवर्तन करेंगे, कला को लोकमंगल की भावनाओं से सजाकर पाठकों के हृदय का परिष्कार करके सच्चे सुख और शान्ति का प्रसार करेंगे। हृदय का परिष्कार और समुन्नति मस्तिष्क के परिष्कार और समुन्नति की अपेक्षा अधिक स्थायी शान्ति की विधायक है।

अनुशासित और नियमित जीवन व्यतीत करने का अभ्यास पड़ जाने के कारण उनका अपना जीवन तो सुखी बन ही जाता है, साथ ही गाँव, समाज, देश सबके लिये वे बड़े ही हितकर सिद्ध होते हैं।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) रेडक्रास की स्थापना कब और क्यों हुई ? (२) रेडक्रास के क्या कर्तव्य हैं ? (३) लघु रेडक्रास समिति का क्या उद्देश्य है ? (४) लघु रेडक्रास-समिति में सम्मिलित होने से क्या लाभ है ?

लेखनार्थ—(१) लक्ष्य, वक्तृता, कलाकार, विधायक का अपने वाक्यों में प्रयोग करो। (२) 'धाता' 'धातृ' शब्द से बना है। इसी प्रकार माता, पिता, विधाता आदि के मूल शब्द लिखो। (३) बालचर के कर्तव्य पर एक निबन्ध लिखो।

व्याकरण—यथा-शक्ति, सुख-सुविधा, जन-कल्याण, लाल-चिह्न के समास बतलाओ और इन समासों के ढंग पर नये समास बनाओ।

---

२९. गाँव की छटा

(परिचय—यह कविता पं० रामनरेश त्रिपाठी की पुस्तक 'पथिक' से ली गयी है। भाषा की सरलता और वर्णन की सजीवता इनकी

कविता के विशेष गुण हैं। 'पथिक', 'मिलन', 'स्वप्न' और 'मानसी' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। ग्रामगीतों के आप विशेषज्ञ हैं।)

प्रवेशक—एक पथिक घूमता-घामता एक गाँव के निकट पहुँचता है। उस गाँव की प्राकृतिक दशा देखकर उसके मन में अनेक भावनाएँ उठती हैं। उनका वर्णन कविता में पढ़िए।

अनति	आच्छादित	कुंचित
शयित	समन्वित	मेघपुष्प

छूता हुआ गाँव की सीमा अति निर्मल जलवाला।
बहता है अविराम निरन्तर कल-कल स्वर से नाला।
अनति दूर पर हरियाली से लदी खड़ी गिरिमाला।
किन्तु नहीं इससे हृदयों में है आनन्द उजाला॥ १॥
कहीं श्याम चट्टान कहीं दर्पण सा उज्ज्वल सर है।
कहीं हरे तृण खेत कहीं गिरि-स्रोत-प्रवाह प्रखर है।
कहीं गगन के खम्भ नारियल, तार भार सिर धारे।
रस-रसिकों के लिए खड़े ज्यों सुस्त नकार-इशारे॥ २॥
घेर रही है जिसे पल्लवित लता सुगन्धित झाड़ी।
छाया-शयित सघन आच्छादित कुंचित पंथ पहाड़ी।
सर्वोपरि उन्नत मन की सी लक्षित अचल ऊँचाई।
एक घड़ी को भी न किसी के लिए हुई दुखदाई॥ ३॥
ऊँचे से झरने झरते हैं शीतल धार धवल है।
यहाँ परम सुख शांति समन्वित नित आनन्द अटल है।
कहीं घास के पास शिला पर बैठ लोग क्षण भर को।
पा सकते हैं शांति, मिटा सकते हैं जी के ज्वर को॥ ४॥
बार-बार बक-पंक्ति-गमन से उज्ज्वल फूलोंवाली।
मेघ-पुष्प-वर्षा से धूमिल घटा क्षितिज पर काली।
लहराती दृग की सीमा तक धानों की हरियाली।
वारिज-नयन गगन-छबि-दर्शक सर की छटा निराली॥ ५॥

कदली-वन से हरी धरा को देख न आँख अघाती।
क्यों यह नहीं गांववालों के जी की जलन मिटाती।
गेहूँ चने मटर जौ के हैं खेत खड़े लहराते।
क्या कारण है जो ये जन का कुछ न विषाद मिटाते? ॥ ६ ॥
कोकिल का आलाप पपीहे की विरहाकुल वानी।
तोता मैना का विवाद बुलबुल की प्रेम कहानी।
गातीं मोहन गीत तरुणियाँ खेत अखेत निरातीं।
क्या वे क्षण भर को न किसी के मन का कष्ट भुलातीं? ॥ ७ ॥
विमलोदक पुष्कर में विकसे चित्र-विचित्र कुसुम हैं।
खड़े चतुर्दिक शांत भाव से लतिकालिंगित द्रुम हैं।
देख सलिल-दर्पण में शोभा वे फूले न समाते।
दे प्रसून उपहार सरोवर को निज हर्ष जनाते ॥ ८ ॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) गाँव की सीमा पर बहनेवाले नाले और थोड़ी दूर पर स्थित गिरि-माला में क्या सौन्दर्य है? (२) गाँव के खेतों में कौन-कौन पौधे लहरा रहे हैं? (३) झरने की शीतल धार के पास बैठकर लोगों के जी की जलन क्यों मिट सकती है?

लेखनार्थ—'हरियाली से लदी खड़ी गिरि-माला', 'लहराती दृग की सीमा तक धानों की हरियाली', 'पपीहे की विरहाकुल बानी' का भाव-सौन्दर्य स्पष्ट करो।

अलंकार—'दर्पण-सा उज्ज्वल सर है' में कौन अलंकार है?

आदेश—अपने गाँव की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करो।

---

३०. भारतीय जनतन्त्र

प्रवेशक—भारतीय जनतन्त्र का उदय संसार के इतिहास में अभूतपूर्व घटना है। भारत का सुदृढ़ गणतन्त्र आज के युद्ध-लोलुप पाश्चात्य राष्ट्रों को शान्ति का संदेश दे सकता है। हमें इसे बलवान् बनाने का सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिए।

संविधान पाश्चात्य गणतन्त्र सक्रिय टिप्पणी

भारतीय जनतन्त्र की चर्चा चलते ही आज के बीस वर्ष पूर्व रावी तट पर की गयी कांग्रेस की घोषणा का सहसा स्मरण हो आता है। वह १९३० ई० की २६ जनवरी थी। इसी दिन राष्ट्र ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की थी। अनेक प्रकार के बलिदानों के फलस्वरूप १५ अगस्त १९४७ ई० को हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। दो वर्षों में देश के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा हमारा संविधान बना। इस प्रकार २६ जनवरी १९५० ई० को भारतवर्ष सम्पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न जनतन्त्रात्मक गणतन्त्र बना और विदेशी शासन का खंडहर सदा के लिए मिट गया।

प्राचीन समय से ही हमारे देश के बहुत से कवियों, विचारकों, संतों और योद्धाओं ने देश की सार्वभौम एकता का स्वप्न देखा था। किन्तु महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ही स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ। इतना बड़ा गणतंत्र विश्व के इतिहास में पहली बार स्थापित हुआ है। संविधान के नियमों से ही इसके सारे राज्य-कार्य सम्पन्न होंगे।

हमारे संविधान-निर्माताओं की दृष्टि समन्वय की रही है। इसके निर्माण में पाश्चात्य जनतन्त्रों के संविधान की सहायता ली गई है। किन्तु इसके आधारभूत मूल आदर्श और सिद्धान्त भारतीय हैं। पश्चिम के वे ही आदर्श ग्रहण किये गये हैं जिनका मेल हमारे जीवन और संस्कृति से है।

देश के प्रत्येक नागरिक को चाहे वह किसी भी धर्म और जाति का क्यों न हो, उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने का समान अवसर

मिलेगा। देश के उन करोड़ों व्यक्तियों को, जिन्हें मूक पशुओं की भाँति लाठी से चाहे जहाँ हाँक दिया जाता था, जिन्हें देश के शासन में जबान खोलने तक का अवसर नहीं दिया जाता था, मत देने का अधिकार दिया गया है। अब प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति, जो मतदान-सम्बन्धी नियमों के अन्तर्गत आता है, स्वतन्त्रतापूर्वक अपना मत दे सकता है।

इतने अधिकार प्राप्त करने पर हमारा उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है। हमें देश में शान्ति स्थापित रखनी होगी। यह काम केवल सरकार का नहीं है। इसमें जनता को सक्रिय योग देना होगा। ऐसा होने पर हमारी सरकार को देश की भीतरी और बाहरी गम्भीर समस्याओं पर अच्छी तरह विचार करने का अवसर मिलेगा। जब तक किसी सरकार को जनता का बल प्राप्त नहीं होता तब तक वह सरकार कोई काम पूरी शक्ति से नहीं कर सकती। इसलिए यदि हमें अपनी प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है और अपने देश को अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाना है तो अपनी सरकार की सहायता करनी होगी।

हमारे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि आँख मूँदकर सरकार की प्रत्येक उचित-अनुचित बात का समर्थन किया करें। हमें सरकार के अनुचित कर्मों की कड़ी से कड़ी टीका-टिप्पणी करनी चाहिए। सच्चा लोकतन्त्र तभी स्थापित हो सकता है जब सरकार की टीका करनेवाला मजबूत विरोधी दल हो। विरोधी दल को विरोध के लिए विरोध नहीं करना चाहिए। उसे सरकार का विरोध करते समय रचनात्मक सुझाव रखना चाहिए।

देश के प्रत्येक नागरिक को देश का हित सर्वोपरि मानना चाहिए। प्रत्येक देश की संस्कृति और सभ्यता अलग-अलग होती है। बाजार में नया ऊँट देखकर उसके पीछे दौड़नेवालों की तरह नयी बातों की

और बिना समझे-बूझे दौड़ पड़ना बौद्धिक दासता है। हमें उन्हीं नयी बातों को ग्रहण करना चाहिए जो हमारी संस्कृति और सभ्यता के अनुकूल हों।

सुदृढ़ भारतीय जनतंत्र द्वारा हम अपने ही देश का कल्याण करने में समर्थ नहीं होंगे अपितु दो विरोधी शिविरों में बँटे विश्व में सुख और शान्ति स्थापित कर सकेंगे। हाँ, इसके लिए पहली शर्त है कि हम अपने देश को बलवान बनाएँ। धन जन तथा प्राकृतिक सम्पत्ति से हमारा देश परिपूर्ण है। केवल इनका उपयोग ठीक से होना चाहिए। इसका सबसे बड़ा उत्तरदायित्व आगे के छात्रों पर है, वे ही कल के नागरिक होंगे और उन्हीं को देश का शासन-सूत्र ग्रहण करना होगा।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) भारत जनतंत्रात्मक गणतन्त्र कब और कैसे बना? (२) भारतीय संविधान बनाने में किन दृष्टियों से काम लिया गया है? (३) आज की परिस्थिति में जनता का क्या उत्तरदायित्व है? (४) विरोधी दल को सरकार की किस ढंग की टीका करनी चाहिए।

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट करो—गणतन्त्र, विधान, नागरिक, प्रतिनिधि। (२) 'विदेशी शासन का खँडहर सर्वदा के लिए मिट गया'— इसका अर्थ स्पष्ट करो। (३) तुम्हारे स्कूल में जो जनतंत्रोत्सव मनाया गया था उसका संक्षिप्त विवरण लिखो।

व्याकरण—'देश के उन करोड़ों······अधिकार दिया गया।'—का वाक्य-विश्लेषण करो।

———

३१. सीता-विवाह

(परिचय—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी-गद्य के जन्मदाता कहे जाते हैं। ये विलक्षण प्रतिभावान् व्यक्ति थे। गद्य के क्षेत्र में इन्होंने खड़ी बोली को अपनाया किन्तु कविता व्रजभाषा में लिखी। व्रजभाषा की सहज सरसता इनकी कविता का प्रधान गुण है। इन्होंने वहुत से लोगों को प्रेरणा देकर लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इनके छोटे-बड़े कुल ग्रन्थों की संख्या १७५ है।)

निगोड़ो पुहुमि बागो साँवर

सवैया

मो मन में निहचै सजनी यह तातहुँ तें प्रान मेरो महा है।
सुन्दर स्याम सुजान सिरोमनि मो हिय में रमि राम रहा है।
रीति पतिव्रत राखि चुकी मुख भाखि चुकी अपनो दुलहा है।
चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु चढ़ौ तौ कहा न चढ़ौ तौ कहा है ॥१॥

कवित्त

जनक-निरासा दुष्ट नृपन की आसा
पुरजन की उदासी सोक रनिवास गनु के।
बीरन के गरब गरूर भरपूर सब
श्रम मद आदि मुनि कौसिक के तनु के।
'हरीचन्द' भय देव-मन के पुहुमि-भार
विकल विचार सबै पुर-नारी जनु के।
संका मिथिलेस की सिया के उर-सूल सबै
तोरि डारे रामचन्द्र साथै हरधनु के ॥२॥

सवैया

वेदन की विधि सों मिथिलेस करी सब ब्याह की रीति सुहाई।
मंत्र पढ़ैं 'हरिचन्द' सबै द्विज गावत मंगल देव मनाई।

हाथ में हाथ के मेलत ही सब बोलि उठे मिलि लोग लुगाई।
जोरी जियो दुलहा दुलही की बधाई बधाई बधाई बधाई ॥३॥
मौर लसै उत मौरी इतै उपमा इकहू नहिं जात कही है।
केसरी बागो बनो दोउ के इत चंद्रिका चारु उतै कुलही है।
मेंहदी पाँव महावर सों 'हरिचंद' महासुषमा उलही है।
लेहु सबै दृग को फल देखहु दूलह राम सिया दुलही है ॥४॥
विधि सों जब ब्याह भयौ दोउ को मनिमंडप मंगल चाँवर मे।
मिथिलेसकुमारी भई दुलही नव दूलह सुंदर साँवर मे।
'हरिचंद' महान अनंद बढ़्यौ दोउ मोद भरे जब भाँवर मे।
तिन सों जग में कछु नाहिं बनी जे न ऐसी बनी पै निछावर मे ॥५॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) सीताजी ने अपने मन में क्या निश्चय किया ? (२) शिवजी के धनुष के साथ रामजी ने और क्या तोड़ डाला ? (३) हाथ में हाथ लेते समय लोग क्या बोल उठे ? (४) किससे संसार में कुछ नहीं बन पड़ा ?

लेखनार्थ—(१) तत्सम रूप बताओ—निहचै, दुलहा, सूल। (२) 'चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु चढ़ौ तौ कहा न चढ़ौ तौ कहा है' का भाव-सौन्दर्य स्पष्ट करो।

छन्द—कवित्त छन्द के प्रत्येक चरण में अक्षरों की संख्या नियत रहती है। गिनकर बताओ कि प्रति चरण में कितने वर्ण हैं ?

———

३२. मीराबाई

प्रवेशक—मीराबाई बहुत बड़ी भक्तिन हो गयी हैं। वे संसार की बाधाएँ झेलती हुई अन्त में अपने लक्ष्य तक पहुँच गयीं। इनके गीतों में इनके हृदय की वेदना लिपटी हुई है। भावों की ऐसी तन्मयता अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

आवर्त	पुष्कर	शालग्राम
निरपेक्ष	ऐहिक	बाह्यदर्शी

मीरा प्रसिद्ध वीर राव जोधाजी की प्रपौत्री, शत्रुघ्न जयमल की बहन और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ योद्धा, क्षत्रियों के यशस्वी नेता महाराणा साँगा की पुत्रवधू थीं। इनकी कहानी संघर्ष की कहानी है, सशक्त व्यक्तित्व की कहानी है, ऐसे व्यक्तित्व की कहानी है कि जिसका स्मरण करके परिस्थितियों और तूफानों को भूली गति मिलती है, आवर्तों को मार्ग का पता लगता है।

राजस्थान की भूमि मीरा जैसी भक्तिन के लिए उर्वरा नहीं कही जा सकती। यह सर्वदा से वीरों का प्रसव करती आयी है। इसके प्रत्येक रजकण में रक्त की प्यास है, तूफानों की ललकार है। पता नहीं इसने कितनी बार रण-तूर्य सुना होगा, शस्त्रों की झंकार, हाथियों और घोड़ों की चिंघाड़ का स्वागत किया होगा। फिर भी कष्ट-सहिष्णुता, लगन, अपूर्व इच्छाशक्ति का अक्षय वरदान मीरा को इसी भूमि ने दिया था। राजस्थान में गाया जाता था—

तन तलवाराँ तिल छियो; तिल तिल ऊपर सीव।
आलाँ घावाँ ऊठसी, छिन इक ठहर नकीव॥

अर्थात् इस वीर का शरीर तलवार के घावों से टुकड़े-टुकड़े हो गया है और तिल-तिल पर सिला हुआ है। हे चारण, तुम थोड़ी देर के लिए अपनी वीर-वाणी बन्द करो, नहीं तो यह वीर अपने गीले घावों से उठकर फिर युद्ध के लिए चला जायगा। उसी राजस्थान में

'पग घुँघुरू बाँध मीरा नाची रे' गीत भी गूँजा। प्रेरणा और उत्साह की वही तीव्रता है, केवल दिशा बदल गयी।

भक्ति की साक्षात् देवी मीरा का जन्म स० १५५९-६० ई० के आस-पास मेड़ता के अन्तर्गत कुड़की गाँव में हुआ। उनके पितामह ऊदाजी परम वैष्णव थे। कहते हैं लड़कपन में खेल-खेल में मीरा ने अपना विवाह गिरिधर गोपाल से कर लिया। मेड़ताराज के अधीश्वर वीरम-देव ने मीरा का विवाह महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से कर दिया। थोड़े दिनों के उपरान्त मीरा का सौभाग्य-सूर्य सर्वदा के लिए अस्त हो गया। अब मीरा श्रीकृष्ण की उपासना में और अधिक लग गयीं और साधु-संतों से सत्संग भी करने लगीं।

मीरा पर मेवाड़-नरेश के अत्याचार की अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। मेवाड़ ऐसे प्रतिष्ठित और राजपूताने के शिरमौर्य राज्य के लिए मीरा का साधु-सन्तों से मिलना अवश्य अच्छा न लगता रहा होगा। किन्तु मीरा को काँटे फूल बन गये। विष अमृत हो गया। पिटारी में बन्द करके भेजा गया साँप शालग्राम की मूर्ति हो गया। मारने के लिए भेजे गये विष के प्याले का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। विष के प्याले का उल्लेख मीरा के एक पद में भी मिलता है—"मीरा विष का प्याला पी गई, सोती खूँटी तान।" अब महाराज ने उन्हें पुष्कर में कूद कर डूब जाने की आज्ञा दी किन्तु उनके गिरिधर गोपाल तो वहाँ भी थे। फिर उनको डर किसका था ?

अत्याचारों की झंझा मीरा के ऊपर से होकर निकल गयी किन्तु उस बलशाली व्यक्तित्व को हिला न सकी। मेवाड़ की तलवारों से विदेशी मुसलमानों की नींवें हिल गयीं। किन्तु मीरा तो उसी कुल की वधू थी, उसी धरती पर रहती थी जिसकी छाती पर न जाने कितनी बार जौहर की ज्वाला जली थी, रक्त की होली खेली गयी थी। अक्षयवट की भाँति उनका विश्वास अचल रहा, गिरि अरावली की भाँति अडिग।

अपने भाई का निमन्त्रण पाकर सं० १५९० में मीरा मेड़ते चली गयीं। वहाँ पर स्वच्छन्द होकर भक्ति-साधन करने लगीं, किंतु भाग्य ने अभी इनका पीछा नहीं छोड़ा। अभी अग्नि-परीक्षा शेष थी। पाँच वर्ष बाद राव मालदेव ने मीरा के भाई से मेड़ता छीन लिया। अब मीरा वृन्दावन की ओर चलीं। वृन्दावन में रूप गोस्वामी की भक्ति की बड़ी ख्याति थी। मीरा के मन में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। ये उनके दर्शन करने आयीं। किन्तु उन्होंने स्त्री से मिलना अस्वीकार कर दिया। मीरा ने कहला भेजा कि मैं तो जानती थी कि संसार में श्रीकृष्ण ही एक पुरुष हैं और सब स्त्री हैं। इससे गहरी चोट खाकर गोस्वामी जी मीरा से मिलने दौड़ पड़े।

सं० १६०० के आस-पास मीराबाई वृन्दावन से द्वारका चली गयीं। वहाँ रणछोरजी के मन्दिर के सामने प्रेमविह्वल होकर वे नाचा गाया करती थीं। सं० १६३० के लगभग उनकी ऐहिक लीला समाप्त हो गयी।

मीरा के स्वच्छ हृदय से गिरधर गोपाल के वियोग में जो गीत निकले वे कविता हो गये। जितनी भाव-तन्मयता मीरा के गीत में मिलती है उतनी हिन्दी के किसी और कवि में नहीं। विद्यापति कवि थे, किन्तु उनकी बाह्यदर्शी दृष्टि में मीरा की तल्लीनता कहाँ? तुलसी दास अपने क्षेत्र में अकेले हैं। वे जहाँ एक भक्त हैं वहाँ सुधारक भी। उनकी उपदेशात्मकता मीरा को छू भी नहीं गयी। सूरदास सितार के तार पर अपने भाव-रागों को मिलाया करते थे। उनके सूरसागर की वाक्य-पटुता, सगुण-निर्गुण-विवेचन सिद्ध करता है कि वे सम्प्रदाय-निरपेक्ष नहीं थे, इसलिए उनके गीतों में उतनी मिठास नहीं जितनी मीरा के गीतों में।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) राजस्थान की भूमि मीरा के लिए उर्वरा क्यों नहीं कही जा सकती? (२) मीरा का विवाह किससे हुआ था?

(३) मीरा पर मेवाड़-नरेश ने क्यों अत्याचार किये ? (४) रूप गोस्वामी ने मीरा से मिलना कैसे स्वीकार किया ? (५) मीरा और विद्यापति के गीतों में क्या अन्तर है ?

लेखनार्थ—(१) विलोम बताओ—विष, श्राद्ध, स्वच्छ, बाह्य। (२) 'जिसका स्मरण कर तूफानों को भूली गति मिलती है'—इसका भाव स्पष्ट करो। (३) मीराबाई पर जो-जो अत्याचार किये गये उन्हें अपने शब्दों में लिखो।

व्याकरण—निम्नलिखित वाक्य की क्रिया किस पुरुष में प्रयुक्त हुई है और क्यों—

"अब महाराज ने उन्हें पुष्कर में कूदकर डूब जाने की आज्ञा दी।"

---

३३. आँखों का आँसू

(परिचय—स्वर्गीय श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी के उन कवियों में हैं जिन्होंने खड़ी बोली को पद्य के अनुरूप ढालने में सर्वप्रथम महान् प्रयास किया। उनका 'प्रिय-प्रवास' अतुकांत हिन्दी कविता का मनोहर ग्रन्थ है। इसकी भाषा संस्कृत-मिश्रित है। इन्होंने हिन्दी के मुहावरों का प्रयोग पद्य में सफलतापूर्वक किया है। चोखे-चौपदे, चुभते-चौपदे और बोल-चाल नामक ग्रन्थों में मुहावरों की छटा और प्रयोग देखने योग्य हैं। इन्होंने ब्रजभाषा में भी कविता की है। रस-कलस में उसका संग्रह है। गद्य में भी इनकी रचनाएँ हैं। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' बोलचाल की भाषा में है। अनेक प्रकार की भाषा लिखने में ये बहुत पटु थे।)

रतन खंजन औगुन दरद

आँख का आँसू ढलकता देखकर,
जी तड़प करके हमारा रह गया।

क्या गया मोती किसी का है बिखर,
या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥ १ ॥

ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ी,
या उगलती बूँद हैं दो मछलियां।
या अनूठी गोलियाँ चांदी-मढ़ी,
खेलती हैं खंजनों की लड़कियाँ ॥ २ ॥

प्यास थी इस आंख को जिसकी बनी,
वह नहीं इसको सका कोई पिला।
प्यास जिससे हो गई है सौगुनी,
वाह क्या अच्छा इसे पानी मिला ॥ ३ ॥

आंखों के आंसू समझ लो बात वह,
आन पर अपनी रहो तुम मत अड़े।
क्यों कोई देगा तुम्हें दिल में जगह,
जब कि दिल में से निकल तुम यों पड़े ॥४॥

बात अपनी ही सुनाता है सभी,
पर छिपाये भेद छिपता है कहीं!
जब किसी का दिल पसीजेगा कभी,
आँख में आंसू कढ़ेगा क्यों नहीं ॥ ५ ॥

बात चलते चल पड़ा आँसू थमा,
खुल पड़े बेंड़ी सुनायी रो दिया।
आज तक जो मैल था जी में जमा,
इन हमारे आंसुओं ने धो दिया ॥ ६ ॥

क्या हुआ अँधेर देखा है कहीं,
सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया।

ढूँढ़ते हैं पर हमें मिलता नहीं,
आँसुओं में दिल हमारा बह गया ॥ ७ ॥

क्यों न वे अब और भी रो-रो मरें,
सब तरफ उनको अँधेरा रह गया।
क्या बिचारी डूबती आँखें करें,
तिल तो था ही आँसुओं में बह गया ॥ ८ ॥

दिल! किया तुमने नहीं मेरी कही,
देखते हैं खो रतन सारे गये।
जोत आंखों में न कहने को रही,
आंसुओं में डूब गये तारे गये ॥ ९ ॥

जो बचा तो हो जलाते आँख तुम,
आँसुओं तुमने बहुत हमको ठगा।
जो बुझाते हो कहीं की आग तुम,
तो कहीं तुम आग देते हो लगा ॥ १० ॥

है हमारे औगुनों की भी न हद,
हाथ गरदन भी उधर फिरती नहीं।
देख करके दूसरों का दुख-दरद,
आँख से दो बूँद भी गिरती नहीं ॥ ११ ॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) आंख का आंसू मोती क्यों कहा गया है ? (२) आंसू के लिये और कौन-कौन सी उपमाएँ दी गई हैं ? (३) आंख में आंसू किन-किन कारणों से आया करते हैं ?

लेखनार्थ—(१) 'आंसू' विषय पर लेख लिखो, उसमें इस पाठ में कही बातों और मुहावरों का उपयोग करो। (२) आंसू के कुछ ऐसे मुहावरों

का अपने वाक्यों में प्रयोग करो जो इस पाठ में न आये हों। (३) आँख के मुहावरों का संग्रह करो और उनका वाक्यों में प्रयोग करो। एक प्रसिद्ध लेखक का कहना है कि आँख का कोई मुहावरा अच्छा नहीं। देखो यह कथन ठीक है ?

आदेश—कुछ पद्य कंठस्थ कर लो।

---

३४. सम्राट् चन्द्रगुप्त

(परिचय—स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार थे। अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, राज्यश्री, जनमेजय का नागयज्ञ, विशाख आदि आपके प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हैं। आप छायावादी कविता के प्रवर्तकों में माने जाते हैं। कामायनी आपकी विख्यात रहस्यवादी रचना है। आप कहानी लिखने में भी दक्ष थे। आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल, छाया आदि इनके कहानी-संग्रह हैं।)

प्रवेशक—मगध का राजा नन्द बड़ा अत्याचारी था। उसने चाणक्य ब्राह्मण को भोजन के लिए निमन्त्रित करके भी श्यामवर्ण का होने से शिखा पकड़कर निकाल दिया। चाणक्य ने वहीं प्रतिज्ञा की कि नन्द से बदला लेने पर ही यह शिखा बँधेगी। चाणक्य ने मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त को किस प्रकार सिंहासन पर बिठाया और नन्द उसके राजनीतिक चक्र से किस प्रकार मारा गया यही इस नाटक में वर्णित है।

मन्त्रणा उत्तरापथ प्रतिहार अमात्य न्यायाधिकरण

(नन्द की रंगशाला, सुवासिनी और राक्षस वन्दी-वेश में)

नन्द—अमात्य राक्षस, यह कौन-सी मन्त्रणा थी। यह पत्र तुम्हीं ने लिखा है ?

राक्षस—(पत्र लेकर पढ़ता हुआ) 'सुवासिनी, उस कारागार से शीघ्र निकल भागो, इस स्त्री के साथ मुझसे आकर मिलो, मैं उत्तरापथ में नवीन राज्य की स्थापना कर रहा हूँ। नन्द से फिर समझ लिया जायेगा।' इत्यादि। (नन्द की ओर देखकर) आश्चर्य, मैंने तो यह नहीं लिखा। यह कैसा प्रपंच है, और किसी का नहीं उसी ब्राह्मण चाणक्य का। महाराज, सतर्क रहिए, अपने अनुकूल परिजनों पर भी विश्वास न कीजिए। कोई भयानक घटना होनेवाली है, यह उसी का सूत्रपात है।

नन्द—इस तरह मैं प्रतारित नहीं किया जा सकता, देखो यह तुम्हारी मुद्रा है। (मुद्रा देता है)

(राक्षस देखकर सिर नीचा कर लेता है)

नन्द—कृतघ्न बोल, उत्तर दे।

राक्षस—मैं कहूँ भी तो आप मानने ही क्यों लगे।

नन्द—तो आज तुम लोगों को भी उसी अन्धकूप में जाना होगा। प्रतिहार!

(राक्षस बन्दी किया जाता है। नागरिकों का प्रवेश)

नाग०—सम्राट, आपसे मगध की प्रजा प्रार्थना करती है कि नागरिक राक्षस और अन्य लोगों पर भी जो राजदण्ड द्वारा किये गये अत्याचार हैं उनका फिर से निराकरण होना चाहिए।

नन्द—क्या तुम लोगों को मेरे न्याय में अविश्वास है?

नाग०—इसके प्रमाण हैं, शकटार, वररुचि और मौर्य।

नन्द—(उन लोगों को देखकर) शकटार, तू अभी जीवित है।

शक०—जीवित हूँ नन्द, नियति सम्राटों से भी प्रबल है।

नन्द—यह मैं क्या देखता हूँ। प्रतिहार पहले इन विद्रोहियों को बन्दी करो। क्या तुम लोगों ने इन्हें छुड़ाया है?

नाग०—उनका न्याय हम लोगों के सामने किया जाय, जिससे हम लोगों को राजनियमों में विश्वास हो। सम्राट्, न्याय को गौरव देने के लिए, इनके अपराध सुनने की इच्छा आपकी प्रजा रखती है।

नन्द—प्रजा की इच्छा से राजा को चलना होगा ?

नाग०—हाँ, महाराज।

नन्द—क्या तुम सबके सब विद्रोही हो ?

नाग०—यह सम्राट् अपने हृदय से पूछ देखें।

शक०—मेरे सात निरपराध पुत्रों का रक्त।

नाग०—न्यायाधिकरण की आड़ में इतनी बड़ी नृशंसता।

नन्द—प्रतिहार, इन सबको वन्दी बनाओ।

(राजप्रहरियों का सबको बाँधने का उद्योग, दूसरी ओर से सैनिकों के साथ चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चन्द्र०—ठहरो ! (सब स्तब्ध रह जाते हैं) महाराज नन्द, हम सब आपकी प्रजा हैं, मनुष्य हैं, हमें पशु बनने का अवसर न दीजिए।

वररुचि—विचार की तो बात है, यदि सुव्यवस्था से काम चल जाय तो उपद्रव क्यों हो।

नन्द—(स्वगत) विभीषिका ! विपत्ति ! सब अपराधी और विद्रोही एकत्र हुए हैं। (कुछ सोचकर प्रकट) अच्छा मौर्य, तुम हमारे सेनापति हो और तुम वररुचि, हमने तुम लोगों को क्षमा कर दिया।

शक०—और हमसे पूछो, नन्द अपनी नृशंसताओं से पूछो, क्षमा कौन करेगा ? तुम, कदापि नहीं, तुम्हारे घृणित अपराधों का न्याय होगा।

नन्द—(तनकर) तब रे मुर्खो, देखो नन्द की निष्ठुरता। प्रतिहार,

राजसिंहासन संकट में है। आओ, आज हमें प्रजा से लड़ना है।

(प्रतिहार प्रहरियों के साथ आगे बढ़ता है, कुछ युद्ध होने के साथ ही राजपक्ष के कुछ लोग मारे जाते हैं, और एक सैनिक आकर नगर के ऊपर आक्रमण होने की सूचना देता है। युद्ध करते-करते चन्द्रगुप्त नन्द को बन्दी बनाता है।)

(चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य—नन्द, शिखा खुली है। फिर खिंचवाने की इच्छा हुई है, इसीलिए आया हूँ। नन्द, आज तुम्हारा विचार होगा।

नन्द—तुम ब्राह्मण मेरे टुकड़ों से पले हुए दरिद्र, तुम मगध के सम्राट् का विचार करोगे। तुम सब लुटेरे हो, डाकू हो, विप्लवी हो, अनार्य हो।

चाणक्य—(राजसिंहासन के पास जाकर) नन्द, तुम्हारे ऊपर इतने अभियोग हैं—महापद्म की हत्या, शकटार को बन्दी करना, उनके सातों पुत्रों को भूख से तड़पाकर मारना। सेनापति मौर्य की हत्या का उद्योग, उसकी स्त्री को और वररुचि को बन्दी बनाना, कितनी ही कुलीन कुमारियों का सतीत्व-नाश, ब्रह्मस्व और अनाथों की वृत्तियों का अपहरण, अन्त में सुवासिनी पर अत्याचार, शकटार की एकमात्र बची हुई सन्तान, सुवासिनी।

नागरिक—(बीच में रोककर हल्ला मचाते हुए) पर्याप्त है। यह पिशाच-लीला और सुनने की आवश्यकता नहीं, सब प्रमाण यहीं उपस्थित हैं।

चन्द्र०—ठहरिए, (नन्द से) कुछ उत्तर देना चाहते हैं?

नन्द—कुछ नहीं।

('वध करो, हत्या करो' का आतंक फैलता है)

चाणक्य—तब भी कुछ समझ लेना चाहिए। नन्द! हम ब्राह्मण हैं, तुम्हारे लिए, भिक्षा मांगकर तुम्हें जीवन-दान दे सकते हैं, लोगे।

('नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी' की उत्तेजना)

(कल्याणी को बन्दिनी बनाए पर्वतेश्वर का प्रवेश)

नन्द—आह बेटी! असह्य, मुझे क्षमा करो। चाणक्य, मैं कल्याणी के संग जंगल में जाकर तपस्या करना चाहता हूँ।

चाणक्य—नागरिक-वृन्द, आप लोग आज्ञा दें। नन्द को जाने की आज्ञा।

शक०—(छुरा निकालकर नन्द की छाती में घुसेड़ देता है) सात हत्याएँ हैं। यदि नन्द सात जन्मों में मेरे ही द्वारा मारा जाय तो मैं उसे क्षमा कर सकता हूँ। मगध नन्द के बिना भी जी सकता है।

वररुचि—अनर्थ!

(सब स्तब्ध रह जाते हैं)

राक्षस—चाणक्य, मुझे भी कुछ बोलने का अधिकार है।

चन्द्र०—अमात्य राक्षस का बन्धन खोल दो। आज मगध के सब नागरिक स्वतंत्र हैं।

(राक्षस, सुवासिनी, कल्याणी का बन्धन खुलता है)

राक्षस—राष्ट्र इस तरह नहीं चल सकता।

चाणक्य—तब?

राक्षस—परिषद् की आयोजना होनी चाहिए।

नागरिक-वृन्द—राक्षस, वररुचि, शकटार, चन्द्रगुप्त और चाणक्य की सम्मिलित परिषद् की हम घोषणा करते हैं।

चाणक्य—परन्तु उत्तरापथ के समान गणतन्त्र की योग्यता मगध में नहीं और मगध पर विपत्ति की भी सम्भावना है। प्राचीन काल से मगध साम्राज्य रहा है, इसलिए यहाँ एक सबल और सुनियन्त्रित शासक

की आवश्यकता है। आप लोगों को यह जान लेना चाहिए कि यवन अभी हमारी छाती पर हैं।

नाग०—तो कौन इसके उपयुक्त है?

चाणक्य—आप ही लोग इसे विचारिए।

शक०—हम लोगों का उद्धारकर्त्ता—उत्तरापथ के अनेक समरों का विजेता वीर चन्द्रगुप्त।

नाग०—चन्द्रगुप्त की जय!

चाणक्य—अस्तु, बढ़ो चन्द्रगुप्त, सिंहासन शून्य नहीं रह सकता। अमात्य राक्षस, सम्राट् का अभिषेक कीजिए।

(मृतक हटाये जाते हैं, कल्याणी दूसरी ओर जाती है। राक्षस चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़कर सिंहासन पर बैठाता है।)

सब नाग०—सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय! मगध की जय!

चाणक्य—मगध के स्वतन्त्र नागरिकों को बधाई है। आज आप लोगों के राष्ट्र का नवीन-जन्म-दिवस है। स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतन्त्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वहीं तक दी जा सकती है जहाँ तक दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है। वत्स चन्द्रगुप्त, स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया। अब मन्त्रि-परिषद् की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगो।

('सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय' का घोष।)

पटाक्षेप

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) नन्द पर चाणक्य ने कौन-कौन से अभियोग लगाये? (२) नन्द की हत्या पर चन्द्रगुप्त कैसे और क्यों सम्राट् बनाया गया? (३) शकटार ने नन्द की हत्या क्यों कर डाली?

लेखनार्थ—(१) चाणक्य की विशेषताओं का वर्णन करो। (२) 'प्रसाद' जी की भाषा की शक्ति पर एक लेख लिखो। इसमें इस पाठ से स्थान-स्थान पर उदाहरण दो। (३) किसी ऐतिहासिक या पौराणिक घटना के आधार पर तुम भी छोटा-सा नाटक लिखो।

आदेश—(१) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'मुद्राराक्षस' नाटक पुस्तकालय से लेकर पढ़ो। (२) अपने मित्रों के सहयोग से यह नाटक खेलो।

---

३५. शिवराज-कीर्ति

(परिचय—जिस समय हिन्दी के अन्य कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए घोर शृङ्गारिक रचनाएँ कर रहे थे, उस समय भूषण ने उत्साहवर्धक वीररस की कविताएँ लिखीं। महाराज शिवाजी और छत्रसाल को, जिनके दरबार में ये रहते थे, इनकी फड़कती हुई कविताओं से अवश्य ही स्फूर्ति और बल मिला होगा।)

प्रवेशक—प्रस्तुत कविता में शिवाजी के सौंदर्य, दानशीलता और वीरता का वर्णन किया गया है।

कल्पद्रुम बगूरे गैवरन

सवैया

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित-चाहै।
एक कहैं अवतार मनोज को यों तन में अति सुन्दरता है।
भूषन एक कहैं महि-इंदु यों राज विराजत बाढ्यो महा है।
एक कहैं नर-सिंह है संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है॥
ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँपुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बल्मीकिहु व्यास के अंग सोहानी।

भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्यचरित्र सिवा-सरजै-सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥
यों सिर पै छतरावत छार हैं जाते उठैं असमान बगूरे।
भूषन भूधरऊ धसकैं जिनके धुनि धक्कन यौं बल रूरे॥
तैं सरजा सिवराज दिये कविराजन कौं गजराज गरूरे।
सुंडन सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महामद सों नद पूरे॥

कवित्त

साजि चतुरंग-सैन अंग में उमंग धारि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठैल-पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत,
जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥
प्रेतिनी - पिसाचरु निसाचर - निसाचरिहु,
मिलि-मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरो भूत-प्रेत भूरि भूधर-भयंकर-से,
जुत्थ-जुत्थ जोगिनी जमाति जोरि आई है।
किलकि-किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आज कहाँ चली,
'काहू पै सिवा-नरेस भृकुटी चढ़ाई है'॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) लोग शिवाजी के सम्बन्ध में क्या कहते हैं?
(२) किन लोगों ने सरस्वती को नष्ट कर दिया था? किसके चरित्र-वर्णन से

सरस्वती पुनः पवित्र हुई ? (३) कविराजों को शिवाजी ने किस तरह के हाथी दिए थे ? (४) शिवाजी की चतुरंगिणी सेना के युद्ध के लिए चलने पर क्या होता है ? (५) पार्वती के पूछने पर कि आज भूत-प्रेत क्यों प्रसन्न हैं, शंकरजी ने क्या उत्तर दिया ?

लेखनार्थ—(१) पहले सवैये के अन्तिम दो चरणों का भाव स्पष्ट करो (२) शिवाजी की वीरता पर एक लेख लिखो ।

छन्द—सवैया छन्दों में गणों की संख्या नियत रहती है। गण तीन अक्षरों का होता है। 'भगण' का प्रयोग हुआ है। भगण का पहला वर्ण गुरु और पिछले दो वर्ण लघु होते हैं। इसमें कितने गणों का प्रयोग हुआ है ?

अलंकार—इस पाठ के पहले कवित्त के अलंकार बताओ ।

---

३६. सैनिक शिक्षा का महत्त्व

प्रवेशक—स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए सैनिक शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। सेना राष्ट्र का बल मानी जाती है। जो बली है, वीर है, वही वसुन्धरा का भोग करता है। कहते हैं कि दुर्बल पर और तो और दैव भी घात लगाए रहता है। यदि देश में सैनिक शिक्षा हो तो राष्ट्र से कोई आँख मिलाने का साहस नहीं कर सकता।

सामरिक अनुशासन परेड शस्त्रास्त्र

स्वतन्त्रता मिलने के साथ-साथ भारतीयों का उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। केवल 'हम स्वतन्त्र हैं—हमारा देश स्वतन्त्र है' के भावुकतापूर्ण नारों से काम नहीं चलने का। देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए हमें बलवान बनना पड़ेगा, अपनी सैनिक शक्ति बढ़ानी पड़ेगी। प्रत्येक व्यक्ति को सैनिक शिक्षा से अवगत होना आवश्यक है। आज के युद्धलोलुप

राष्ट्रों के बीच सम्मानपूर्वक जीने के लिए हमारी सामरिक शक्ति सुदृढ़ होनी चाहिए। विश्व में शान्ति-स्थापन का कार्य भी कोई शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र ही कर सकता है।

देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के निमित्त ही सैनिक शिक्षा आवश्यक नहीं है, वरन् मनुष्य के वैयक्तिक, सामाजिक एवं कौटुम्बिक जीवन को सुखमय बनाने में यह शिक्षा बहुत सहायक होती है। सैनिक शिक्षा से मनुष्य की शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है।

सैनिक शिक्षा में अनुशासन का बड़ा महत्त्व है। आज की बढ़ती हुई उच्छृङ्खलता को नियन्त्रित करने के लिए सैनिक शिक्षा बहुत ही उपयुक्त साधन है। आज स्कूलों और कालेजों में सैनिक शिक्षा दी जाने लगी है। सैनिक अनुशासन के कारण छात्र के जीवन में अनुशासन घर कर लेगा और वह एक सुयोग्य नागरिक बन सकेगा।

सैनिक शिक्षा में परेड का सबसे अधिक महत्त्व है। एक साथ पैर उठाकर चलने, घूमने, दौड़ने के मूल में सहयोगिता की भावना है। इससे लोगों में सामूहिक ढंग से काम करने की प्रवत्ति बढ़ती है। घोर से घोर संकट पड़ने पर सैनिक को अपने स्थान से न हटना चाहिए। खेल के खिलाड़ियों की भाँति एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए। नायक की आज्ञा मिलने पर ही सैनिक अपना स्थान छोड़ता है। एक बार नेपोलियन बोनापार्ट के एक सैनिक ने नेपोलियन की जान बचाने के लिए अपना स्थान छोड़कर शत्रु पर आक्रमण कर दिया। नेपोलियन ने उस सैनिक की सूझ की प्रशंसा तो की, किन्तु बिना आज्ञा के स्थान छोड़ने के लिए दंड भी दिया।

शस्त्रास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के बाद शिक्षण में एक प्रकार का आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है। कठिन परिस्थितियों में, भयानक संकट उपस्थित होने पर वह तनिक भी विचलित नहीं

होता। देश की रक्षा के लिए आवश्यक है कि हमारे देश के लोग नौसेना, विमानसेना, स्थलसेना आदि में भरती होकर देश के गौरव की रक्षा करें।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) सैनिक शिक्षा क्यों आवश्यक है? (२) सैनिक शिक्षा से जीवन कैसे सुखमय होता है? (३) नेपोलियन ने अपने प्राण-रक्षक सैनिक को दंड क्यों दिया?

लेखनार्थ—(१) तुमने सैनिकों की जो परेड देखी हो और उसका तुम्हारे मन पर जो प्रभाव पड़ा हो उसका वर्णन करो। (२) अपने को सैनिक समझकर अपने घर पत्र लिखो। उसमें सैनिक की उमंगों, विचारों और रहन-सहन का उल्लेख करो। (३) शस्त्र और अस्त्र का भेद समझाओ।

व्याकरण—(१) व्यक्ति से वैयक्तिक बना और कुटुम्ब से कौटुम्बिक। इसी प्रकार उद्योग तथा शिक्षा से विशेषण बनाओ। (२) 'अनुशासन' में 'अनु' उपसर्ग शासन के पहले जोड़कर एक नया शब्द बना। 'अनु' उपसर्ग लगाकर दान, मान, दिन से शब्द बनाओ और उनका अर्थ समझाओ।

—:o:—

३७. कबीर की साखी

(परिचय—अपनी अटपटी बानी में सन्देश सुनानेवाले कबीर को कौन नहीं जानता? वे पढ़े-लिखे न थे फिर भी बड़े-बड़े पढ़े-लिखों के कान काटते थे। ये निर्गुणोपासक सन्त थे। उपदेश करना इनका लक्ष्य था। फिर भी काव्यात्मक स्थलों का इनकी कविता में अभाव नहीं है। जाति-विद्वेष का जहर दूर करने का इन्होंने बहुत प्रयत्न किया। इनकी कविताओं का संग्रह कबीर-ग्रन्थावली के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

दोहे-सोरठे में इनके जो उपदेश लिखे गये वे साखी के नाम से प्रसिद्ध हैं।)

आपा अच्यंता दुहेला

गुरु गोविन्द तो एक है, दूजा यहु आकार।
आप मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥ १ ॥

मूरिख संग न कीजिये, लोहा जल न तिराइ।
कदली सीप भुवंग मुख, एक बूँद तिहुँ भाइ ॥ २ ॥

ऊँचे कुल का जनमियाँ करनी ऊँच न होइ।
सोवरन कलस सुरा भरया साधू निंद्या सोइ ॥ ३ ॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ ॥ ४ ॥

साईं सूं सब होत है, बंदे पैं कछु नाहिं।
राईं थैं परवत करैं, परबत राईं माँहिं ॥ ५ ॥

कमोदनी जलहरि बसै, चन्दा बसै अकास।
जो जाही का भावता, सो ताही के पास ॥ ६ ॥

खेत न छाड़ै सूरिवाँ, जूझै द्वै दल माँहिं।
आसा जीवन मरण की, मन मैं आँणै नाँहि ॥ ७ ॥

प्रेम न खेतों नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो लै जाय ॥ ८ ॥

कबीर पल की सुधि नहीं, करैं कालिह का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूँ तीतर को बाज ॥ ९ ॥

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन माँहिं।
ऐसैं घटि घटि राम है, दुनियाँ देखै नाहि ॥ १० ॥

निन्दक दूर न कीजिये, कीजै आदर मान।
निरमल तनमन सब करै, बकि बकि आनहि आन ॥ ११ ॥

कबीर घास न निंदिये, जो पाऊँ तलि होइ।
ऊड़ि पड़े जब आँखि मैं, खरा दुहेला होइ ॥ १२ ॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) मूर्ख का संग क्यों नहीं करना चाहिए ? (२) किस तरह की वाणी बोलनी चाहिए ? (३) निन्दकों को क्यों दूर नहीं करना चाहिए ?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों के तत्सम रूप लिखो—सोवरन, जलहरि, सुखिां, पाऊँ। (२) 'ऐसैं घटि घटि राम है दुनियाँ देखै नाहिं' का भावार्थ स्पष्ट करो। (३) कबीर के दोहों से तुम्हें जो शिक्षा मिलती हो उसे अपनी भाषा में लिखो।

आदेश—जो चार दोहे तुमको अच्छे लगें उन्हें कंठस्थ करो।

---

३८. सबसे बड़ा संकट

प्रवेशक—संसार में सबसे पहले मनुष्य जीने की व्यवस्था करता है। जीना खाद्यान्न पर अवलम्बित है। इधर अनेक कारणों से भारत में खाद्यान्न की कमी पड़ गयी है। यह राष्ट्र का सबसे बड़ा संकट है। इससे बचने के लिये हमें अधिक अन्न उत्पन्न करना चाहिए।

असंतुलित आयात उर्वरा रूढ़िप्रियता

प्राणिमात्र का जीवन भोजन पर अवलम्बित है। भोजन की समस्या जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। दूसरी आवश्यक वस्तुओं के अभाव में हमारा काम चल सकता है किन्तु भोजन बिना तो हम जी नहीं सकते। अन्न का संकट राष्ट्र का सबसे बड़ा संकट है। ब्रिटिश शासन से यों ही असंतुलित अर्थ-व्यवस्था प्राप्त हुई थी, युद्ध की मार और शरणार्थियों की समस्या ने हमारा भार और बोझिल बना दिया।

हम बहुत दिनों तक दूसरे देशों से अन्न नहीं मँगा सकते। युद्ध की परिस्थितियों में तो यह असंभव हो जाता है। फिर भारत ऐसे विशाल देश में पर्याप्त अन्न उत्पन्न किया जा सकता है। इसलिए भारत-सरकार ने 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन चलाया है और उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वर्ष भर में ही अन्न का आयात बन्द कर दिया जायगा। सरकार की योजनाएँ तब तक सफल नहीं हो सकतीं जब तक जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त न हो। सरकार के कार्य में हाथ बँटाना हमारा कर्तव्य है।

अन्न का अपव्यय रोक देने से खाद्यान्न की बचत हो सकती है। हमारे घरों में पर्याप्त अन्न नष्ट हो जाता है। मात्रा से अधिक भोजन पकाने से भी अन्न नष्ट होता है। आजकल तो हमें 'बाकी बचै न बासी खाय' लोकोक्ति के अनुसार कार्य करना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि अन्न को पुराने लोग बहुत पूज्य मानते थे। इसी से अन्न की देवी अन्नपूर्णा की पूजा प्रचलित हुई।

खाद्यान्न संकट के मामले में विद्यार्थी बड़ा काम कर सकते हैं। उनके सहयोग से राष्ट्र को अत्युत्तम सहायता मिल सकती है। उनको अपने घरों में अन्न बरबाद करनेवालों को समझाना चाहिए। उनकी बात का प्रभाव घरवालों पर बहुत पड़ेगा। घर पर बड़ी-बड़ी दावतें न देने दें। विवाह आदि के अवसरों पर बहुत अधिक लोगों को निमन्त्रित न करें। इससे उनके घरवालों की बचत भी होगी और राष्ट्र का अन्न नष्ट होने से बच जायगा। ऐसे अवसरों पर स्कूल की लड़कियाँ अधिक काम दे सकती हैं। खाद्यान्नों के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं से अधिक रुचिकर सामग्री प्रस्तुत कर सकती हैं। इससे अतिथियों का अच्छा स्वागत भी हो जायगा।

शहर के विद्यार्थी अपने घरों के समीप बची हुई जगह में तरकारियाँ लगाएँ। तरकारियाँ सहायक अन्न का काम दे सकती

हैं। गाँव के विद्यार्थियों के घरों के आसपास तो बहुत-सी भूमि बेकार पड़ी रहती है, उन्हें भी वहाँ तरकारियाँ लगानी चाहिए। केले और पपीते शीघ्र ही बढ़कर फलने लगते हैं। बेकार भूमि का उपयोग इस प्रकार किया जा सकता है। पपीता तो घर के आँगन में भी लग सकता है।

हमारे देश में खेतों की उत्पादन-शक्ति कम हो गई है। अमेरिका और रूस में प्रति बीघा हमारे देश की प्रति बीघा पैदावार से चौगुना पैदा होता है। उपयुक्त खाद की कमी के कारण धरती की उर्वरा शक्ति का ह्रास हो गया है। हमारे यहाँ के किसान अच्छी खाद बनाना नहीं जानते। सरकार को चाहिए कि उन्हें खाद बनाना सिखाए। यह काम ग्राम-पंचायतों के द्वारा अच्छी तरह किया जा सकता है। अधिक अन्न उपजाने के लिए अच्छे बीजों का होना आवश्यक है। निर्धनता के कारण किसान सड़े निर्जीव बीज सस्ते मूल्य में खरीद लाते हैं और उन्हीं को अपने खेतों में बोते हैं। इसमें सुधार के लिए कृषि-विभाग ने स्थान-स्थान पर बीज-गोदाम खोल रखे हैं, किन्तु अज्ञान के कारण किसान इसका उपयोग नहीं कर पाते। सिन्चाई की समुचित व्यवस्था न होने से उत्पादन में कमी हो जाती है। चकबन्दी के अभाव में बहुत-सा श्रम व्यर्थ जाता है और अनेक टुकड़ों में बँटे खेतों की रखवाली भी नहीं हो पाती।

भारत में ३० करोड़ बीघा भूमि व्यर्थ पड़ी हुई है। सरकार कुछ भूमि का उपयोग कर रही है। इस भूमि को उपयोगी बनाने के लिए पर्याप्त रुपया खर्च करना पड़ेगा। नहरें खोदनी पड़ेंगी, जंगलों को साफ करना होगा।

'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन की शिथिलता का प्रमुख कारण किसानों की अशिक्षा, निर्धनता और रूढ़िप्रियता है। अशिक्षित होने के कारण वे नवीन योजनाओं के सम्पर्क में नहीं आते। निर्धन होने के कारण वे नवीन प्रयासों में उत्साह दिखाने की कौन कहे उन्हें

दूर ही से प्रणाम करते हैं। सरकार ने गाँव में कुएँ बनवाने की सुविधा दी है। किस्त पर ट्रैक्टर दे रही है। अच्छा और अधिक गुड़ बनाने की योजना भी व्यवहार में लायी जा रही है; किन्तु उपर्युक्त कारणों से किसानों का पूरा सहयोग नहीं मिलता। इस आन्दोलन को प्रचारित करने के लिए सरकार को अपना सन्देश गाँव-गाँव पहुँचाना चाहिए। हमें भी इसमें योग देना होगा। सब लोग चाहते हैं कि उनके खेतों में अधिक अन्न उत्पन्न हो। हमें उन्हें केवल नवीन मार्ग से परिचित भर करा देना है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) आज राष्ट्र का सबसे बड़ा संकट क्या है? (२) खाद्यान्न-संकट के मामले में छात्र क्या कर सकते हैं? (३) खेतों की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट करो—शरणार्थी बीज-गोदाम, चकबन्दी, ट्रैक्टर। (२) 'धन' में 'निर्' उपसर्ग लगाकर 'निर्धन' बना है। इसी प्रकार 'निर्' उपसर्ग लगाकर पाँच शब्द बनाओ। (३) तुम अपने गाँव के अधिक उत्पादन में किस प्रकार सहायता कर सकते हो? इस पर एक निबन्ध लिखो।

व्याकरण—सन्धि-विग्रह करो—खाद्यान्न, निर्धनता, अत्युत्तम, संतुलित।

---

३९. भैंसागाड़ी

(परिचय—इस कविता के निर्माता श्री भगवती चरण वर्मा प्रगतिशील कवियों में गिने जाते हैं। ये सामान्य विषय पर बड़ी चुटीली रचना करते हैं। ये उपन्यासकार और कहानीकार भी हैं। चित्रलेखा इनका प्रसिद्ध और उच्चकोटि का उपन्यास है। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'मानव' नाम से प्रकाशित हुआ है।)

प्रवेशक—भैंसागाड़ी ऐसे सामान्य विषय पर कवि ने मार्मिकतापूर्वक सरल भाषा में कविता की है।

उच्छ्वास संसृति क्षितिज कङ्काल

चरमर चरमर चूँ चरर मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी।

(१)

गति के पागलपन से प्रेरित
चलती रहती संसृति महान्,
सागर पर चलते हैं जहाज,
अम्बर पर चलते वायुयान;
भूतल के कोने - कोने में
रेलों ट्रामों का जाल बिछा,
हैं दौड़ रहीं मोटरें बसें
लेकर मानव का वृहत् ज्ञान।

पर इस प्रदेश में जहाँ नहीं
उच्छ्वास भावनाएँ चाहें
वे भूखे अधखाए किसान
भर रहे जहाँ सूनी आहें,
नंगे बच्चे चिथड़े पहने
माताएँ जर्जर डोल रहीं
है जहाँ विवशता नृत्य कर रही,
धूल उड़ाती हैं राहें,

भर-भरकर फिर मिटने का स्वर
कँप-कँप उठते जिनके स्तर-स्तर
हिलती - डुलती हँपती - कँपती
कुछ रुक-रुककर कुछ सिहर-सिहर
चरमर चरमर चूँ चरर मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी।

(२)

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे,
कुछ पाँच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर
मैं कहता हूँ खँडहर उसको,
पर वे कहते हैं उसे ग्राम,
जिसमें भर देती निज धुँधलापन
असफलता की सुबह - शाम,
था वहीं कटा दो दिन पहले
गेहूँ का छोटा एक खेत
तुम भरे - पुरे तुम हृष्ट - पुष्ट
ऐ तुम समर्थ कर्ता - हर्ता,
तुमने देखा है क्या बोलो
हिलता - डुलता कंकाल एक
वह था उसका ही खेत जिसे
उसने उन पिछले चार माह,
अपने शोणित को सुखा - सुखा
भर - भरकर अपनी विवश आह,
तैयार किया था औ घर में
थी रही रुग्ण पत्नी कराह।
उसका कुटुम्ब था भरा - पुरा
आहों से, हाहाकारों से
फाकों से लड़ - लड़कर प्रतिदिन
घुट - घुटकर अत्याचारों से,
तैयार किया था उसने ही
अपना छोटा सा एक खेत।

बीबी-बच्चों से छीन-छीन
दाना-दाना, अपने से भर,
भूखे तड़पें या मरें भरों
का तो भरना है उसको घर
धन की दानवता से पीड़ित
कुछ फटा हुआ, कुछ कर्कश स्वर,
चरमर चरमर चूँ चरर मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी ।

(३)

है बीस कोस पर एक नगर,
उस एक नगर में एक हाट
जिसमें मानव की दानवता
फैलाए है निज राज-पाट,
चाँदी के टुकड़ों को लेने
प्रतिदिन पिसकर, भूखों मरकर,
भैंसागाड़ी पर लदा हुआ
जा रहा चला मानव जर्जर,
है उसे चुकाना सूद, कर्ज
है उसे चुकाना अपना कर,
जितना खाली है उसका घर,
उतना खाली उसका अन्तर

नीचे जलनेवाली पृथ्वी
ऊपर जलनेवाला अम्बर
औ कठिन भूख की जलन लिए
नर बैठा है बनकर पत्थर

पीछे है पशुता का खँडहर
दानवता का सामने नगर
मानव का कृश कंकाल लिए
चरमर चरमर चूँ चरर मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) 'भैंसागाड़ी' शीर्षक कविता में कवि ने समाज के किस रूप का वर्णन किया है? (२) निर्धन के कष्टों का वर्णन करो।

लेखनार्थ—(१) नगर की धनाढ्यता और ग्राम की दरिद्रता की तुलना 'भैंसागाड़ी' कविता के आधार पर अपने शब्दों में करो। (२) नगर के शोषण पर एक निबन्ध लिखो। (३) निम्नलिखित पंक्तियों का अर्थ लिखो—(क) 'जिसमें भर देती निज धुन्धलापन असफलता की सुबह-शाम' (ख) 'पीछे है पशुता का खंडहर दानवता का सामने नगर'।

---

४०. भानुमती

प्रवेशक—इस एकांकी में मेवाड़ की एक गरीब कन्या भानुमती के देशप्रेम की मार्मिक झलक दिखाई गयी है। एक बार महाराणा प्रताप ने चित्तौड़ शहर तथा उसके आसपास के लोगों को अपने स्थान छोड़कर कुछ काल के लिये अन्यत्र बसने को कहा था। ऐसा इसलिए किया था कि चित्तौड़ पर यदि मुगलों की चढ़ाई हो तो उन्हें रसद आदि सुलभ न हो सके। राजाज्ञा के उल्लंघन में शीरा के पिता को मृत्युदण्ड दिया गया। किन्तु भानुमती व्यक्ति से देश का मूल्य बहुत आँकती थी। शेष कहानी एकांकी में पढ़ो।

क्षोभ प्रतिहिंसा वैधव्य आततायी प्रतिशोध

(मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत मिट्टी के एक छोटे से घर का प्रकोष्ठ। चिन्ता-ग्रस्त मुद्रा में शीरा बैठा हुआ है। सहसा उसकी छोटी बहन भानुमती का प्रवेश।)

भानु०—भैया, तुम इतने उदास क्यों हो, जो होना था वह हो चुका, अब व्यर्थ का पछतावा क्यों ?

शीरा—भानु, तुमको मेरी मानसिक पीड़ा और क्षोभ का पता नहीं है। तुम जाओ, शीघ्र चली जाओ, छेड़ो मत।

भानु०—बकरियों को कुछ चारा नहीं मिला, तुमने भी कुछ खाया नहीं। उठो, इस तरह कैसे काम चलेगा ?

शीरा—मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही है। जब तक पिता का तर्पण उस नराधम राणा के रक्त से न करूंगा तब तक मुझे विश्राम कहाँ ?

भानु०—राणा के प्रति तुम्हें ऐसे दुर्वचन न निकालने चाहिए। वह स्वतन्त्रता का एकमात्र सहारा है। वह ऐसी ज्योति है जिससे परतन्त्रता के अन्धकार का विनाश होगा। उसे बुझाने का पाप न करो शीरा।

शीरा—यदि वृद्ध का हत्यारा देवता हो तो उसके लिए मुझे दैत्य बनना पड़ेगा। वर्जित क्षेत्र में बकरियाँ चराने के कारण उसे मृत्युदण्ड दिया गया। पिता! पिता! (शीरा छाती पीटने लगता है।)

भानु०—बुद्धि से काम लो भाई। राणा ने चित्तौड़ को वर्जित क्षेत्र घोषित कर दिया था। उस क्षेत्र में पाये जानेवाले लोगों को प्राणदण्ड की कठोर आज्ञा भी प्रचारित की जा चुकी थी। ऐसी स्थिति में क्या राणा का कर्तव्य नहीं था कि उक्त घोषणा के विरुद्ध कार्य करने वाले को उचित दण्ड देते ?

शीरा—मैंने प्रताप की हत्या का दृढ़ निश्चय कर लिया है। उसी अपराध में मेरा बहनोई भी पकड़ लिया गया है। उसको भी वही दंड मिलेगा जो पिताजी को मिल चुका है। आततायी से प्रतिशोध के लिए मैं पागल हो गया हूँ।

भानु०—मैं वैधव्य का दुःख सह लूँगी, किन्तु राणा की हत्या नहीं। राणा की हत्या चित्तौड़ की हत्या है, देश की हत्या है।

शीरा—अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना मैंने राणा से ही सीखा है। चित्तौड़ के कण-कण से मैं परिचित हूँ। जिस जंगल में राणा छिपा हुआ है, उसे मैंने अनेक बार छान डाला है। (अपने तीर को दिखाता हुआ) यह तीर कल राजरक्त में स्नान करेगा।

भानु०—भैया!

शीरा—चुप रहो। भगवान् से प्रार्थना करो कि मैं अपने कार्य में सफल होऊँ।

(वह तीर की भाँति निकल जाता है।)

भानु०—शीरा...।

(प्रातःकाल का समय। सघन जंगल में पहाड़ी की एक गुफा में राणा अपने सामन्तों के साथ बैठे हैं। द्वाररक्षक आता है।)

द्वार०—महाराज की जय हो, दो अश्वारोही आपसे मिलना चाहते हैं।

राणा—पूछो, क्या काम है?

द्वार०—महाराज, वे हम लोगों से कुछ नहीं बतलाते। जो कुछ कहना होगा आप ही से कहेंगे।

राणा—अच्छा, उन्हें भीतर ले आओ।

(दोनों अश्वारोही भीतर आते हैं और राणा का अभिवादन करते हैं)

राणा—मुझसे क्या काम है? तुम लोग कहाँ से आ रहे हो?

प्र० अश्वा०—महाराज, मैं कुछ नहीं जानता, मैं तो अपने साथी के साथ आया हूँ।

दू० अश्वा०—महाराणा क्षमा करेंगे। मैं आज एक अति महत्त्व-पूर्ण समाचार ले आया हूँ।

राणा—तुम तो पुरुष नहीं, स्त्री हो?

दू० अश्वा०—महाराणा का अनुमान ठीक है, मैं आपकी निर्धन प्रजा हूँ।

राणा—तुमको घोड़े कहाँ मिले?

दू० अश्वा०—चुरा लायी हूँ।

राणा—चुरा लायी हो? क्यों?

अश्वा०—इसलिए कि चित्तौड़ अनाथ न हो। स्वतन्त्रता का दीप बुझ न जाय।

राणा—ठीक-ठीक बतलाओ। तुम्हारा क्या अभिप्राय है?

अश्वा०—मेरा भाई शीरा यहीं कहीं पास की झाड़ी में छिपा होगा। उसने आपकी हत्या की प्रतिज्ञा की है। मेरे वृद्ध पिता को राजाज्ञा-उल्लंघन के अपराध में मृत्युदण्ड दिया गया है। शीरा का बहनोई भी उसी अपराध में बन्दी बना लिया गया है। इसी लिए...।

(शीरा पकड़ा गया। दूसरे दिन सवेरे उसे दरबार में उपस्थित किया गया।)

राणा—सामन्तो, मैं भानुमती के पति को मुक्त करता हूँ। भानुमती पर चित्तौड़ को गर्व है। शीरा के सम्बन्ध में आप लोगों की क्या इच्छा है?

सामन्त—शीरा को प्राणदण्ड दिया जाय।

राणा—(भानुमती की ओर देखते हुए) बेटी, मैं तुम्हारी राष्ट्र-सेवा से अत्यधिक प्रसन्न हूँ। मैं इसके लिए तुम्हें मुँहमाँगा पारितोषिक देना चाहता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो माँगो।

भानु०—महाराणा, मैं कृतज्ञ हूँ। मुझे पिता का शव तथा भाई शीरा की मुक्ति चाहिए।

राणा—वैसा ही हो। जिस देश में भानुमती जैसी कन्याएँ हैं, उस देश पर आँच नहीं आ सकती।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) शीरा महाराणा प्रताप का क्यों वध करना चाहता था ? (२) भानुमती ने उसे राणा के वध से रोकने का प्रयत्न क्यों किया ? (३) भानुमती ने राणा की प्राण-रक्षा कैसे की ? (४) भानुमती ने राणा से क्या माँगा ?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग स्वरचित वाक्यों में करो—तर्पण, प्रतिशोध, उल्लंघन, कृतज्ञ। (२) विलोम बताओ—प्रतिहिंसा, वैधव्य, कृतज्ञ, मुक्ति। (३) भानुमती की पूरी कहानी अपनी भाषा में लिखो।

व्याकरण—समास बताओ—प्रतिशोध, द्वाररक्षक, मुँहमांगा, देशसेवा।

आदेश—अपने साथियों के सहयोग से यह नाटक खेलो।

---

४१. समदर्शी भगवान्

(परिचय—इसके प्रणेता श्री माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के पुराने प्रसिद्ध कवि हैं। आप मध्यप्रदेश के खंडवा के रहनेवाले हैं। 'कर्मवीर' नामक पत्र के आप यशस्वी सम्पादक हैं। हिमकिरीटिनी और हिमतरंगिणी आपकी कविता के संग्रह हैं। 'साहित्य-देवता' नाम से आपने भावमय गद्य भी लिखा है। आपकी काव्य रचनाएँ 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रकाशित होती रही हैं।)

प्रवेशक—इसमें भगवान् की समदर्शिता पर मार्मिक ढंग से टीका-टिप्पणी की गयी है।

न्यायाधीश द्वन्द्व नटवर

तू ही क्या समदर्शी भगवान्
क्या तू ही है, अखिल जगत् का
न्यायाधीश महान्

क्या तू ही देता है जग
को, सौदे में आनन्द।
क्या तुझसे ही पाते हैं
मानव संकट दुःख-द्वन्द्व

क्या तू ही है, जो कहता है
सम सब मेरे पास
किन्तु प्रार्थना की रिश्वत
पर करता शत्रु-विनाश

मेरा वैरी हो, क्या उसका
तू न रह गया नाथ
मेरा रिपु, क्या तेरा भी रिपु
रे समदर्शी नाथ।

क्या तू ही है, पतित अभागों
का शासन करता है।
क्या तू है सम्राट
लाज तज न्यायदंड धरता है

जो तू है, मेरा माधव
तू क्योंकर होवेगा
मेरा हरि तो पतितों को
उठने को अंगुलि देगा

गो-गण में जो खेले
ग्वालों की झिड़की जो झेले
जिसके खेल-कूद से टूटें
जीवन – शाप – झमेले

माखन पावे वृन्दावन में
बैठा विश्व नचावै,

वह मेरा, गोपाल, पतन से
पहले पतित उठावे
व्याकुल ही जिसका घर है
अकुलातों का गिरिधर है,
मेरा वह नटवर है, जो
राधा का मुरलीधर है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) समदर्शी किसे कहते हैं ? (२) समदर्शी भगवान् का शत्रु और मित्र के प्रति कैसा व्यवहार ठीक है ?

लेखनार्थ—(१) गोपाल कृष्ण ने पतितों के उद्धार के जो-जो कार्य किये हों उनका उल्लेख करते हुए लेख लिखो। (२) श्रीकृष्ण की भाँति श्री राम के पतितोद्धार का वर्णन करो और दोनों की तुलना भी करो।

आदेश—इस कविता का सस्वर पाठ करो।

---

४२. राम ने जहाँ सेतु बाँधा

प्रवेशक—रामेश्वरम् सुदूर दक्षिण में समुद्र के बीच द्वीप में बसा हुआ है। प्राचीन इतिहास के अनुसार राम ने यहाँ समुद्र पर पुल बंधवाया था तथा शिव या ईश्वर की स्थापना की थी। रामेश्वर के मन्दिर की विशालता और भव्यता देखने ही योग्य है।

प्रक्षालन संबल आध्यात्मिक गोपुर

यात्रा के नाम से ही मेरे मन में उल्लास भर आता है, तुरन्त चल पड़ने की बालकोचित आकांक्षा मचल पड़ती है। बहुत दिनों से संचित अवसाद और जड़ता को दूर हटाकर उनके स्थान पर

प्रसन्नता और चेतना की स्फूर्ति लाने के लिए यात्रा आवश्यक हो जाती है। तेली के बैल की तरह दैनिक कार्यों के कोल्हू में बँधा और चक्कर काटता हुआ मनुष्य यात्रा में मनुष्य हो जाता है। जब रामेश्वरम्—सुदूर दक्षिण तक राम ने जहाँ सेतु बाँधा, जहाँ सागर हमारे विशाल देश का पाद-प्रक्षालन करता रहता है—घूम आने की तैयारी पूरी हो गई तब तो मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझने लगा।

इटारसी स्टेशन के आगे बढ़ने पर हमारी गाड़ी हरियाली से लदी हुई पर्वत-श्रेणियों के बीच भागने लगी जहाँ पहाड़ियों की ऊँचाई बहुत कम हो गई है। दूर तक फैला हुआ जंगल ही जंगल दिखलाई पड़ता है। आगे चलकर जंगल विरल हो जाता है और ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी खेतों में काम करती हुई महाराष्ट्र की स्त्रियाँ दिखाई पड़ती हैं। कालिदास का मेघ इस मार्ग से अवश्य आया होगा, परिश्रम से क्लान्त यहाँ की स्त्रियों पर फुहारें बरसा-कर उसने अपनी ओर निश्चय ही आकृष्ट किया होगा और कहीं मैदानों में संतरों के ढेर देख वह अवश्य ठिठका होगा और काम में लगे स्त्री-पुरुष और बच्चों को शीतल छाया का आलिंगन देकर ही आगे बढ़ा होगा। सन्ध्या को आठ बजे हम मध्यप्रान्त की राज-धानी नागपुर पहुँचे। इसीके पास रामटेक है जहाँ मेघदूत के यक्ष ने निर्वासित होकर एक वर्ष बिताया था।

मद्रा-वेजवाड़ा-विट्रगुंटा नाम के स्टेशनों से पता लगा कि हम, महाराष्ट्र के आगे बढ़कर तेलगू या आन्ध्र प्रदेश में आ गये। गुंटूर के बाद हमारी गाड़ी समुद्र-तट के बिलकुल समीप से चल रही थी। यह खुला समुद्र नहीं है। समुद्र का उथला भाग स्थल में घुस आया है। इस उथले समुद्र में मछली मारनेवाली नौकाएँ बिखरी हुई थीं। मछुए बहँगी पर मछली लादकर ले आ रहे थे।

सन्ध्या को हमारी गाड़ी मद्रास पहुँची। मद्रास आधुनिक ढंग का बसा हुआ सुन्दर शहर है। चौड़ी साफ-सुथरी सड़कें, ट्राम, बिजली

से चलनेवाली रेलगाड़ियों आदि आधुनिकतम यातायात के साधनों से सुसज्जित शहर बड़ा सुहावना लग रहा था। मद्रास के कुली और इक्केवान भी कामचलाऊ अँगरेजी बोलते थे। हिन्दी का मद्रास में अच्छा प्रचार नहीं हुआ है। कुछ जो अँगरेजी नहीं समझते, तामिल की नकल पर बने हिन्दी के शब्द अनुमान के सहारे समझ लेते हैं— जैसे, 'पापड़' तो नहीं समझते, पर 'पापड़म्' समझ लेते हैं।

मैं सोचने लगा कि यहाँ कोलाहल के मारे कदाचित् अपनी ही वाणी अपने को सुनाई न पड़े, पर जब टैक्सी मेरे हाथ को चूमती निकल गयी और मोटर का भोंपू भी मौन साधे ही रहा तो पूछने पर पता चला कि यहाँ भोंपू, घण्टी आदि बजाने की मनाही है। ध्यान दिया और तुलना की तो यह फैसला शीघ्र ही कर डाला कि बनारस की सड़कों और यहाँ के कोलाहल में तीन पाँच का अनुपात अवश्य है। अस्तु।

रामेश्वरम् जाने के लिए हमें सीधे मद्रास जंक्शन से कोई गाड़ी नहीं मिलती। यहाँ से डेढ़ मील पर छोटी लाइन का एगमोर जंकशन है। रामेश्वरम् जाने के लिए वहाँ से गाड़ी पकड़नी पड़ती है। यात्रियों को त्रिचनापल्ली उतर कर रंगनाथ का मन्दिर भी देख लेना चाहिए। कावेरी-तट पर स्थित यह बहुत बड़ा मन्दिर है। पामबम जंकशन पर हमें रामेश्वरम् के लिए दूसरी गाड़ी मिलती है। रामेश्वरम् एक छोटा-सा रमणीक द्वीप है। रेलगाड़ी को इस द्वीप में प्रविष्ट होने के पहले समुद्र पर बँधे रेलवे पुल से जाना पड़ता है। जाते समय पुल के दोनों ओर पवन के झूले पर झूलती अकूल नीलिमा का प्रसार देखकर मन तरंगित और तन पुलकित हो उठता है। बायीं ओर समुद्र की नीली लहरें झाग उगलती हुई दौड़ रही थीं। समुद्र के तरल नील वक्ष पर उजले झाग की पंक्तियाँ छोटी-मोटी आकाश-गंगा-सी प्रतीत होती थीं। कुछ दूरी पर अपने सशक्त डैनों में जीवन के सर्राटे भरे पक्षी किनारे की ओर भागे आ रहे थे।

एक धर्मशाला में सामान रखकर हम समुद्र-स्नान के लिए चल पड़े। सन्ध्या का समय था। समुद्र की नील लहरें अस्तोन्मुख सूर्य की स्वर्णिम किरणों के साथ आँखमिचौली खेल रही थीं। हर-हर करती हुई लहरें पता नहीं कितने युगों से हमारे इस महादेश का पाद-प्रक्षालन कर रही हैं। किनारे पड़ी हुई चट्टानों से टकराकर वे बिखर जाती हैं और भारत की आध्यात्मिकता—जीवन की क्षणभंगुरता—का पाठ पढ़ाती हैं।

समुद्र-स्नान के बाद हम लोग मन्दिर की ओर बढ़े। भिखमंगे बालकों का एक दल हम लोगों के पीछे-पीछे 'बाबा-बाबा, राजा बाबा, दान करो, पुण्य करो, पूजा करो, बाबा-बाबू' का सस्वर पाठ करता हुआ चला आ रहा था। डाँटने पर ये भाग्य के मारे मटमैले लड़के दाँत निकाल देते थे। रामेश्वरम् का मन्दिर चतुर्दिक १००० फुट लम्बे और ६५० फुट चौड़े प्राचीर से घिरा हुआ है। द्राविड़ कला का समस्त सौन्दर्य तथा सभी त्रुटियाँ यहाँ एक साथ देखने को मिल जाती हैं। चारों दिशाओं में चार गोपुर हैं। केवल पश्चिमी गोपुर पूर्ण है—कला की दृष्टि से सबसे भव्य है। मन्दिर की विराटता भीतर के प्राकारों—गलियारों—से पुकारने लगती हैं। इनकी लम्बाई लगभग ४००० फुट है।

विशाल प्रस्तर-खंडों को इतने विराट् मन्दिर का रूप देना साधारण काम नहीं है। किन्तु जिन लोगों ने अपनी कल्पना को इतना भव्य रूप दिया उनमें कला की वह सूक्ष्मता नहीं थी जो सूक्ष्मता तंजौर और मदुरा के मन्दिरों को रूप देनेवाले कला-पारखियों की कल्पना में थी। भारत की सांस्कृतिक एकता का मौन उद्घोष करता हुआ रामेश्वरम् का यह मन्दिर समुद्र की उत्ताल तरंगों से सांकेतिक भाषा में न जाने किस अतीत की मधुर गाथा कहता रहता है। सम्भवतः सागर की मुखर और मन्दिर की मूक वाणी मर्यादापुरुषोत्तम के मधुर संस्मरणों को जपती रहती है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) इटारसी से नागपुर के बीच हमें क्या दृश्य दिखाई पड़ता है ? (२) रामेश्वरम् कहाँ बसा हुआ है ? (३) रामेश्वरम् के मन्दिर की विराटता का वर्णन करो। (४) तुम किन आधारों पर कह सकते हो कि रामेश्वरम् का मन्दिर भारत की सांस्कृतिक एकता का द्योतक है ?

लेखनार्थ—(१) अर्थ स्पष्ट करो—गोपुर, द्राविड़ कला, आध्यात्मिक, प्राकार। (२) निम्नलिखित शब्दों के अर्थ का अन्तर बताओ—प्रकार-प्राकार, स्मरण-संस्मरण, अदृष्टि-अदृष्ट। (३) यदि तुमने काशी का श्रीविश्वनाथ-मन्दिर देखा हो तो उसका वर्णन करो या किसी भी मन्दिर की भव्यता और कला के सम्बन्ध में तुम जो कुछ जानते हो लिखो।

व्याकरण—सन्धि-विग्रह करो—अस्तोन्मुख, चतुर्दिक, संस्मरण।

---

४३. गोचारण

(परिचय—महाकवि सूरदास से भला कौन परिचित न होगा। हिन्दी-कविता-क्षेत्र में सूर-तुलसी की जोड़ी अनन्त काल तक अमर रहेगी। बन्द आँखोंवाले सूरदास ने भाव-विह्वल होकर तम्बूरे पर जो सरस गीत गाये वे कविता हो गये। सूरदास के सूरसागर को रस का महासागर कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं।)

प्रवेशक—इन पदों में श्रीकृष्ण के गाय चराने जाने का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण हुआ है।

टेक मौड़ा हाऊ चबाई

(१)

आज मैं गाइ चरावन जैहौं।
वृन्दावन में भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहौं।'
'ऐसी बात कहौ जनि बारे, देखौ अपनी भाँति।

तनक-तनक पग चलिहौ कैसे, आवत ह्वैहै राति।
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरो कमल-बदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहि माँझ।'
'तेरी सौं मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत, परथो आपनी टेक।

(२)

चले सब गाइ चरावन ग्वाल।
हे री टेर सुनत लरिकन की, दौरि गए नंदलाल।
फिर इत-उत जसुमति जौ देखै, दृष्टि न परै कन्हाई।
जान्यौ जात ग्वाल सँग दौरथो, टेरति जसुमति धाई।
जात चल्यौ गैयन के पाछे, बलदाऊ कहि टेरत।
पाछे आवति जननी देखी, फिरि फिरि इत कौं हेरत।
बल देख्यौ मोहन कों आवत, सखा किये सब ठाढ़े।
पहुँची आइ जसोदा रिस भरि, दोउ भुज पकरे गाढ़े।
हलधर कह्यो, जान दै मो संग, आवहिं आज सबारे।
सूरदास बल सों कहै जसुमति, देखे रहियौ प्यारे॥

(३)

आज बने बन तें ब्रज आवत।
नाना रंग सुमन की माला, नँद नंदन-उर पर छबि पावत।
संग गोप गोधन-गन लीन्हें, नाना गति कौतुक उपजावत।
कोउ गावत, कोउ नृत्य करत, कोउ उघटत, कोउ करताल बजावत।
राँभति गाइ बच्छहित सुधि करि, प्रेम उमँगि थन दूध चुवावत।
जसुमति बोलि उठी हरषित ह्वै, कान्हा धेनु चराए आवत।
इतनी कहत आइ गए मोहन, जननी दौरि हिये लै लावत।
सूर स्याम के कृत्य जसोमति, ग्वाल-बाल कहि प्रगट सुनावत॥

(४)

मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लग्यौ बन बड़ो तमासो, सब मौड़ा मिलि आऊ।

मोहूँ कों चुचकारि गयौ लै, जहाँ सघन वन झाऊ।
भागि चलौ, कहि गयौ उहाँ तें, काटि खाइ रे हाऊ।
हौं डरपौं कांपौं अरु रोवौं, कोउ नहिं धीर धराऊ।
मोसों कहत मोल को लीनो, आप कहावत साऊ।
सूरदास बल बड़ो चवाई, तैसेहि मिले सखाऊ।

(५)

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइँ पिराइ।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं, अपनी सौंहँ दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरो अति बालक, मारत ताहिं रिंगाइ ॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) श्रीकृष्ण ने किस बात के लिए हठ किया ? (२) श्रीकृष्ण के गाय चरानेवाले दल के साथ चले जाने पर यशोदा ने क्या किया ? (३) श्रीकृष्ण ने माता से बलराम की क्या शिकायत की ? (४) श्रीकृष्ण ने गाय चराना क्यों अस्वीकार किया ?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों के शुद्ध रूप लिखो—बच्छ, सौंहँ, सिगरे। (२) 'हलधर कह्यौ, जान दै मो संग, आवहिं आज सवारे' का सौंदर्य स्पष्ट करो। (३) 'गोचारण' में आयी हुई बातों का वर्णन अपनी भाषा में करो।

आदेश—जो पद्य तुम्हें बहुत अच्छा लग रहा हो उसे कंठस्थ करो।

—

४४. संयुक्त राष्ट्रसंघ

प्रवेशक—विश्व में स्थायी सुख-शान्ति स्थापित करने के लिए दुनिया के प्रायः सभी स्वतन्त्र राष्ट्रों ने मिलकर एक संस्था स्थापित की है। इसे 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' कहते हैं। यह संस्था राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा शान्तिमय उपायों से करने का प्रयत्न करती है। यदि इसके सदस्य-राष्ट्र ईमानदारी से काम करें तो इसकी सफलता में सन्देह नहीं है।

अन्तरराष्ट्रीय श्रमसंघ सचिवालय निर्दिष्ट

द्वितीय महासमर की लपटों में जले हुए विजेता-राष्ट्रों ने भावी युद्ध रोकने के लिए एक ऐसी संस्था की स्थापना का विचार किया जो सभी अन्तरराष्ट्रीय झगड़े शान्तिपूर्ण प्रयत्नों से सुलझा सके। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् बने हुए राष्ट्रसंघ की असफलताएँ उसकी समाधि बन गयीं। आज के संयुक्त राष्ट्रसंघ के आधारभूत सिद्धांत वे ही हैं जो राष्ट्रसंघ के थे, किन्तु इसकी अधिकार-सीमा अपेक्षाकृत व्यापक है।

इस महायुद्ध के कुछ वर्ष पूर्व ही इस प्रकार की संस्था की नींव पड़ चुकी थी। १ नवम्बर १९४३ को स्तालिन, रूजवेल्ट और चर्चिल ने अपने संयुक्त वक्तव्य में अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा और शान्ति के लिए एक संस्था के निर्माण की आवश्यकता स्वीकार की। एक बैठक में इन तीन राष्ट्रनायकों ने इस पर पुनः विचार किया और निश्चय किया कि इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ की बैठक में उपस्थित किया जाय। अप्रैल १९४५ में सैनफ्रांसिस्को में ५० राष्ट्रों की एक बैठक बुलायी गयी। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् एक विधान-पत्र बनाया गया। उस पर जब अधिकांश राष्ट्रों ने स्वीकृति दे दी तब संयुक्त राष्ट्रसंघ नियमित रूप से कार्य करने लगा।

विश्व में शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था करना संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख उद्देश्य है—जनता के समान अधिकारों और आत्मनिर्णय के आधार पर राष्ट्रों में परस्पर मैत्री-भाव बढ़ाना; विश्वशान्ति को सुदृढ़ बनाने के लिए अन्य उपायों का अवलम्बन करना; जाति, भाषा, धर्म और स्त्री-पुरुष के भेद-भाव से रहित सबके मूल अधिकारों की प्रतिष्ठा के निमित्त अन्तरराष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना संघ के उद्देश्य में सम्मिलित हैं। सभी सदस्य-राष्ट्रों को इन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होना पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ को ठीक ढंग से संचालित करने के लिए उसे छह भागों में विभक्त कर दिया गया है—साधारण सभा, सुरक्षा-परिषद्, आर्थिक और सामाजिक परिषद्, संरक्षण-परिषद्, अंतरराष्ट्रीय न्यायालय और सचिवालय। इनमें साधारण सभा और सुरक्षा-परिषद् का सबसे अधिक महत्व है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य साधारण सभा के सदस्य होते हैं। साधारण सभा के अधिवेशनों में सब देश पाँच-पाँच प्रतिनिधि भेज सकते हैं किन्तु प्रत्येक राष्ट्र को एक ही मत देने का अधिकार है। साधारण सभा से सामान्य बहुमत पर साधारण विषयों का निपटारा हो जाता है, किन्तु महत्वपूर्ण विषयों के निर्णय के लिए दो तिहाई मतों का होना आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी विभाग अपना वार्षिक लेखा इस सभा में विचार के लिए भेजते हैं। अन्तरराष्ट्रीय न्यायाधीश के चुनाव में भी इस सभा का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा और शान्ति का सबसे अधिक उत्तरदायित्व सुरक्षा-परिषद् पर है। चीन, फ्रांस, रूस, ब्रिटेन और अमेरिका इस सभा के स्थायी सदस्य हैं। अन्य छह सदस्य दो वर्षों के लिये साधारण सभा द्वारा चुने जाते हैं। कार्य-क्रम तथा निर्णय के सम्बन्ध में सात सदस्यों को एकमत होना चाहिए। इनमें से

पाँचों स्थायी सदस्यों की सहमति परमावश्यक है। पाँच स्थायी सदस्यों के इस अधिकार को 'वीटो' कहते हैं। यह परिषद् राष्ट्रों के पारस्परिक विवाद तथा आपस में संघर्ष बढ़ानेवाली स्थितियों की जाँच कर सकती है। सुरक्षा-परिषद् शान्ति स्थापित करने के लिए शान्तिमय उपायों से काम लेती है। आवश्यकता पड़ने पर सेना का उपयोग कर सकती है।

आर्थिक और सामाजिक परिषद् को अधिकार है कि वह अन्तरराष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी विषयों का अध्ययन करे और इनपर, अपना विचार साधारण सभा में रखे तथा संघ के सदस्यों और विशिष्ट संस्थाओं से उसके अनुकूल कार्य करने की सिफारिश करे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसंघ इस प्रकार का कार्य १९१९ से करता है।

संरक्षण-परिषद् का मुख्य उद्देश्य पराधीन राष्ट्रों की राजनीतिक, आर्थिक, शिक्षण-सम्बन्धी व्यवस्था करना, स्वायत्त शासन का विकास करना तथा अन्तरराष्ट्रीय शान्ति बनाए रखना है। यह परिषद् अपना कार्य साधारण सभा की देख-रेख में करती है।

अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय के कुल २० सदस्य होते हैं। इनमें से ५ सदस्यों को सुरक्षा-परिषद् तथा १५ सदस्यों को साधारण सभा चुनती है। प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र इसका निर्णय मानने को वचनबद्ध है। सचिवालय का कार्य प्रत्येक विभाग द्वारा निर्दिष्ट कार्यक्रम की व्यवस्था करना है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ अपना कार्य लगन और तत्परता के साथ कर रहा है। इसमें अपूर्णताएँ हैं, त्रुटियाँ हैं। परस्पर दोषारोपण और गुटबन्दी की गन्दगी भी है। किन्तु यदि दुनियाँ की कुछ महाशक्तियाँ अपने स्वार्थों से थोड़ा ऊपर उठकर व्यर्थ के वाग्जाल के फेर में न पड़कर विश्व की शान्ति-व्यवस्था को सच्चे अर्थ में अपना ध्येय बनाएँ तो मानवता का बड़ा कल्याण हो।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) संयुक्त राष्ट्रसंघ कब से नियमित रूप से कार्य करने लगा ? (२) संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख ध्येय क्या है ? (३) कार्य की सुविधा के लिए राष्ट्रसंघ को किन-किन भागों में विभक्त किया गया है ? (४) सुरक्षा-परिषद् का क्या महत्व है ?

लेखनार्थ—(१) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट करो—आत्मनिर्णय का अधिकार, 'वीटो', स्वायत्त-शासन, अन्तरराष्ट्रीय सहयोग। (२) आर्थिक शब्द कैसे बना ? इस तरह के तीन शब्द और बनाओ। (३) संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपयोगिता पर निबन्ध लिखो।

व्याकरण—सन्धि-विग्रह करो—अन्तरराष्ट्रीय, अधिकांश, सचिवालय, वाग्जाल।

आदेश—अपने अध्यापक से पूछो कि काश्मीर के मामले पर राष्ट्रसंघ का क्या रुख रहा है।

—:०:—

४५. बाबाजी का भोग

(परिचय—छोटी-छोटी कहानियाँ लिखने में स्वर्गीय प्रेमचन्द सिद्धहस्त थे। इनका नाम धनपतराय था पर ये लिखते थे प्रेमचन्द नाम से। अब धनपतराय को कौन जानता है, पर प्रेमचन्द से सभी हिन्दीवाले परिचित हैं। इन्होंने दो-ढाई सौ कहानियाँ और पन्द्रह-बीस उपन्यास लिखे हैं। सप्तसरोज, नवनिधि, प्रेमद्वादशी, प्रेमपूर्णिमा, प्रेमपचीसी आदि इनकी कहानियों के संग्रह हैं। मानसरोवर नाम से इनकी सभी कहानियों का संकलन कई भागों में हुआ है। सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं। भारत के ग्रामीण जीवन का चित्रण करने में ये विशेष प्रवीण थे। इनकी कहानियों में वर्तमान जीवन की यथार्थ झलक मिलती है।)

प्रवेशक—इस कहानी में अतिथि-सेवा का आदर्श उदाहरण है।

खलिहान   अँगौवा   भंडार   पिंडी

(१)

रामधन अहीर के द्वार पर एक साधु आकर बोला—बच्चा, तेरा कल्याण हो, कुछ साधु पर श्रद्धा कर।

रामधन ने आकर स्त्री से कहा—साधु द्वार पर आये हैं, उन्हें कुछ दे दे।

स्त्री बरतन माँज रही थी, और इस घोर चिन्ता में मग्न थी कि आज भोजन क्या बनेगा, घर में अनाज का एक दाना भी न था। चैत का महीना था। किन्तु यहाँ दोपहर ही को अन्धकार छा गया था। उपज सारी की सारी खलियान से उठ गयी। आधी महाजन ने ले ली, आधी जमींदार के प्यादों ने वसूल की, भूसा बेचा तो बैल के व्यापारी से गला छूटा, बस थोड़ी-सी गाँठ अपने हिस्से में आयी। उसी को पीट-पीटकर मन भर दाना निकाला था। किसी तरह चैत का महीना पार हुआ। अब आगे क्या होगा, क्या बैल खाएँगे, क्या घर के प्राणी खाएँगे, यह ईश्वर ही जाने। पर द्वार पर साधु आ गया है उसे निराश कैसे लौटाएँ, अपने दिल में क्या कहेगा।

स्त्री ने कहा—क्या दे दूं, कुछ तो रहा नहीं।

रामधन—जा देख तो मटके में, कुछ आटा-वाटा मिल जाय तो ले आ।

स्त्री—मटका झाड़-पोंछकर तो कल ही चूल्हा जला था। क्या उसमें बरकत होगी ?

रामधन—तो मुझसे यह न कहा जायगा कि बाबा घर में कुछ नहीं है। किसी के घर से माँग ला।

स्त्री—जिससे लिया उसे देने की नौबत नहीं आयी, अब और किस मुँह से माँगूँ ?

रामधन—देवताओं के लिए कुछ अँगौवा निकाला है न, वही ला, दे आऊँ।

स्त्री—देवताओं की पूजा कहाँ से होगी?

रामधन—देवता माँगने तो नहीं आते। समाई होगी करना, न समाई हो न करना।

स्त्री—अरे तो कुछ अँगौवा भी पसेरी दो पसेरी है। बहुत होगा तो आधा सेर, इसके बाद क्या फिर कोई साधु न आवेगा? उसे तो जवाब देना ही पड़ेगा।

रामधन—यह बला तो टलेगी, फिर देखी जायगी।

स्त्री झुँझलाकर उठी और एक छोटी-सी हाँड़ी उठा लायी, जिसमें मुश्किल से आधा सेर आटा था। यह गेहूँ का आटा बड़े यत्न से देवताओं के लिए रखा हुआ था। रामधन कुछ देर खड़ा सोचता रहा, तब आटा एक कटोरे में रखकर बाहर आया और साधु की झोली में डाल दिया।

(२)

महात्मा ने आटा लेकर कहा—बच्चा, अब तो साधु आज यहीं रहेंगे। कुछ थोड़ी-सी दाल दे तो साधु का भोग लग जाय।

रामधन ने फिर आकर स्त्री से कहा। संयोग से दाल घर में थी। रामधन ने दाल, नमक और उपले जुटा दिये। फिर कुएँ से पानी खींच लाया। साधु ने बड़ी विधि से बाटियाँ बनायीं, दाल पकायी और आलू झोली से निकाल कर भुरता बनाया। जब सब सामग्री तैयार हो गयी तो रामधन से बोले—बच्चा, भगवान् के भोग के लिए कौड़ी भर घी चाहिए। रसोई पवित्र न होगी तो भोग कैसे लगेगा?

रामधन—बाबाजी, घी तो घर में न होगा।

साधु—बच्चा, भगवान् का दिया तेरे पास बहुत है। ऐसी बात न कह।

रामधन—महाराज, मेरे पास गाय-भैंस कुछ नहीं है, घी कहाँ से होगा ?

साधु—बच्चा, भगवान् के भंडार में सब कुछ है, जाकर मालकिन से कहो तो।

रामधन ने आकर फिर स्त्री से कहा—घी माँगते हैं, माँगने को भीख, पर घी बिना कौर नहीं धँसता।

स्त्री—तो इसी दाल में से थोड़ी लेकर बनिये के यहाँ से ला दो। जब सब किया है, तो इतने के लिए उन्हें क्यों नाराज करते हो।

घी आ गया। साधु जी ने ठाकुर जी की पिंडी निकाली, घंटी बजायी और भोग लगाने बैठे। खूब तनकर खाया, फिर पेट पर हाथ फेरते हुए द्वार पर लेट गये। थाली, बटुली और कलछुली रामधन घर में माँजने के लिए उठा ले गया।

उस रात रामधन के घर चूल्हा नहीं जला। खाली दाल पकाकर ही पी ली।

रामधन लेटा, तो सोच रहा था···मुझसे तो यही अच्छे।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) रामधन ने बाबाजी से अपने घर की दशा साफ-साफ क्यों नहीं बतायी ? (२) बाबाजी के व्यवहार से उनके स्वभाव के सम्बन्ध में क्या धारणा होती है ? (३) अतिथि-सत्कार के कुछ अन्य उदाहरण बताओ।

लेखनार्थ—(१) अतिथि-सेवा पर लेख लिखो। साधु-सन्तों के चरित्र का गुण वर्णन करो और उससे बाबाजी के चरित्र को मिलाओ। (२) ऐसी कोई घटना जो तुम्हारे सामने घटी हो उस पर अपनी शैली से कहानी लिखो।

—:*:—

४६. आचरण

(परिचय—इस लेख के लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, बेजोड़ निबन्ध-लेखक और प्रख्यात आलोचक हो गये हैं। इतना गुरु-गम्भीर व्यक्तित्व लेकर हिन्दी में अभी तक दूसरा आलोचक नहीं आया। शुक्लजी के विचार, भाषा-शैली सभी अपनी विशेषता लिए हुए हैं। इनका हिन्दी-साहित्य का इतिहास, सूर, तुलसी, जायसी की आलोचनाएँ, चिन्तामणि, रस-मीमांसा आदि सभी ग्रन्थ हिन्दी के अनमोल रत्न हैं।)

प्रवेशक—प्रस्तुत लेख में युवकों को किस तरह का आचरण करना चाहिए यही बताया गया है।

प्रफुल्लता आत्मसंस्कार तत्त्ववेत्ता प्रसाद

संसार में आचरण ही देखा जाता है। उसे हमारा आत्म-बल निरीक्षण करने की न तो फुरसत है, न गरज। वह हमारे चरित्र ही को हमारे आत्मबल का आभास समझता है। इससे यह मतलब नहीं कि मनुष्य के कार्यों ही से सदा उसके हृदय की थाह मिलती है और उसकी सिद्धि, भावना तथा प्रवृत्ति का ठीक-ठीक पता लगता है। प्रायः ऐसा होता है कि मनुष्य के कार्य या तो उसकी मनोवृत्ति को बहुत बढ़ाकर प्रकट करते हैं या छिपाते हैं। मनुष्य जैसा होता है, वैसा हम उसे समझते हैं। कौन मनुष्य कैसा है, यह हम उसके कार्यों को देखकर निश्चित करते हैं। अतः जो अपने को भला कहलाना चाहता है, वह भलों के अनुकूल अपना आचरण बनाता है।

युवा पुरुष को जीवन के कार्यों को आरम्भ करते ही, जीवन के मार्ग पर पैर रखते ही, रुपये की कदर समझ लेनी चाहिए। यह समझ

बहुतों को बहुत दुःख उठा चुकने पर आती है, जब कि सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है और सारे हौसले पस्त हो जाते हैं। विरक्त लोग धन को तुच्छ समझें तो समझ सकते हैं, पर गृहस्थ के लिए धन बड़ी भारी शक्ति है, भलाई करने का बड़ा भारी साधन है। यह दुर्बलों में बल ला सकता है, पीड़ितों का उद्धार कर सकता है, अनाथ बालकों के मुख पर प्रफुल्लता ला सकता है और दुखिया विधवाओं के आँसू पोंछ सकता है। धन का सदुपयोग करो, दुरुपयोग न करो। अपनी बुद्धि उसमें लगाओ, पर अपनी मनोवृत्तियों को उसके अधीन न करो। बहुतेरे नवयुवक रुपये के सम्बन्ध में बड़ी असावधानी प्रकट करते हैं। बाबू हरिश्चन्द्र रुपये-पैसे के मामले में बहुत असावधान रहे, जिसके कारण उनके जीवन का पिछला भाग बहुत किरकिरा हो गया। इंगलिस्तान का प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ सदा ऋण का कष्ट भोगा करता था। यदि कोई युवा पुरुष निरन्तर सुखपूर्वक निर्वाह करना चाहता हो तो उसे अपनी आमदनी से कम खर्च करना चाहिए।

मैं यह नहीं मानता कि आत्मसंस्कार में निरत युवा पुरुष के लिये निर्धनता कोई बड़ी भारी बाधा है। पैथागोरस कहता है कि 'योग्यता और अभाव दोनों का साथ है।' हमारे यहाँ के अधिकांश तत्त्ववेत्ता और कवि निर्धन मनुष्य थे। सूर, तुलसी, जायसी, गौतम, कणाद आदि धनाढ्य पुरुष नहीं थे। बात तो यह है कि तुम अपनी जीवन-यात्रा चाहे गरीब के मोटे कपड़े पहनकर आरम्भ करो, चाहे अमीर के रेशमी कपड़े पहनकर, तुम्हें किफायत का ध्यान रखना चाहिए और मितव्ययी होकर ऋण के प्रेत को दूर ही रखना चाहिए। ऋण के मुख्य रूप से चार कारण बतलाये जाते हैं—कपड़ा-लत्ता, जूआ, तड़क-फड़क और आमोद-प्रमोद। जिसने आत्मसंस्कार का उच्च व्रत लिया हो, उसे इनमें से किसी के जाल में न फँसना चाहिए। कपड़े-लत्ते को ही लो। थोड़े ही से खर्च में तुम

अपना रूप-रंग दस भले आदमियों के पास मर्यादापूर्वक बैठने के योग्य बना सकते हो।

मनुष्य का आचरण बहुत कुछ उसके जीवन के उद्देश्य पर निर्भर रहता है। यदि मनुष्य का संकल्प बहुत क्षुद्र हो तो उसे पूरा करने में शायद कुछ प्रयत्न न करना पड़े। यदि हम श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि हम अपना उद्देश्य श्रेष्ठ रखें, हम अपना आदर्श उच्च रखें। फल वा पुरस्कार की उच्चता के अनुसार ही प्रयत्न को उच्चता प्राप्त होती है, यद्यपि प्रयत्न का आनन्द फल के आनन्द पर निर्भर रहता है। एक महात्मा पवित्रता की रक्षा की सबसे अच्छी युक्ति बतलाता है। वह युवा पुरुषों को ऐसी बातों से चट दूर भागने की चेतावनी देता है जो अपवित्रता की ओर जाती हैं, समस्त बुरे विचार वा इन्द्रियलोलुपता के प्रमादपूर्ण कर्म पवित्रता के नियम-भंग के लिये सोपान हैं। इन्द्रियासक्तों की संगति से बचो, सदा सज्जन और संयमी लोगों का संग करो, पवित्र वस्तुओं का चिन्तन करो, धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करो, क्योंकि वे पवित्रता के मूल स्रोत हैं। जो लोग उनका अध्ययन करते हैं, उन्हें पवित्रता और दृढ़ता आती है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) मनुष्य कैसा है इसे हम कैसे समझ सकते हैं? (२) रुपये के सम्बन्ध में असावधानी करने से क्या हानि होती है? (३) तुम कैसे कह सकते हो कि निर्धनता मनुष्य के मार्ग में कोई बड़ी बाधा नहीं है? (४) मनुष्य का आचरण किस चीज पर निर्भर रहता है?

लेखनार्थ—(१) 'योग्यता और अभाव दोनों का साथ है' इसका अभिप्राय स्पष्ट करो। (२) वाक्यों में प्रयोग द्वारा अर्थ स्पष्ट करो—प्रवृत्ति, आशाओं पर पानी फेरना, हौसला पस्त होना, मितव्ययी।

(३) आचरण-सम्बन्धी बातों को ध्यान में रखते हुए किसी ऐसे व्यक्ति की जीवनी लिखो जिसमें ये सारी विशेषताएँ मिलती हों।

व्याकरण— 'इन्द्रियासक्तों की संगति······के मूल स्रोत हैं' का वाक्य-विश्लेषण करो।

---

४७. गंगा-गौरव

(परिचय—रीतिकालीन कवियों में बिहारी को छोड़कर पद्माकर ऐसा सर्वप्रिय कोई कवि नहीं हुआ। 'जगद्विनोद' सहृदय काव्य-रसिकों को बहुत अधिक भाया। इसकी भाषा स्वाभाविक, प्रवाहयुक्त और साफ-सुथरी है। इनकी कविता में अनुप्रास की अद्भुत छटा दिखाई पड़ती है।)

प्रवेशक—नीचे के पद्य 'गंगालहरी' से उद्धृत किये गये हैं।

निपात जकाने पंचमुख

(१)

वई थी बिरंचि भई बामन - पगन पर
फैली-फैली फिरी ईस-सीस पै सुगथ की।
आय कै जहान जह्नु-जंघा लपटाई फेरि,
दीनन के हेत दौरि कीन्ही तीन पथ की।
कहै 'पद्माकर' सु महिमा कहाँ लौं कहौं,
गंगा नाम पायौ सोही सबके अरथ की।
चारयौ फल-फली फली गहगही वहवही,
लहलही कीरति-लता है भगीरथ की॥

(२)

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज यह,
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दे।

कहै 'पदमाकर' नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दै।
देखु वह देवनदी कीन्हें सब देव, यातें,
दूतन बुलाय के विदा के वेगि पान दै।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खति जान दै वही को बहि जान दै॥

(३)

आयो जौन तेरी धौरी धारा में धँसत जात,
तिनको न होत सुरपुर तें निपात है।
कहै 'पदमाकर' तिहारो नाम जाके मुख,
ताके मुख अमृत को पुंज सरसात है।
तेरो तोय छ्वै कैऔ छुवति तन जाको बात,
तिनकी चलै न जमलोकन में बात है।
जहा-जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जात गंगा,
तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है॥

(४)

सबन के बीच मीच-समै महानीच-मुख,
गंगा मैया तेरे आजु रेनु-कन द्वै गए।
कहै 'पदमाकर' दसा यौं सुनौ ताकी वाकी,
छवि को छटान सों त्यौं छित-छोर-छ्वै गए।
दूत दबकाने चित्रगुप्त चुपकाने, औ,
जकाने जमजाल पाप-पुंज लुंज ह्वै गए।
चारिमुख चारिभुज चाहि-चाहि रहे ताहि,
पंचन के देखत ही पंचमुख ह्वै गए॥

(५)

जम को न जोर जब पापिन पै चल्यौ तब,
हाथ जोरि गंगाजू सों चुगली करैं खरे।
बड़ेन पै ढरी पै ना ढरी देवि तुच्छन पै,
कहै 'पदमाकर' सुनावत हरे हरे।
बड़ेन पै ढरे बड़ी पाइये बढ़ाई देखौ,
ईस पै ढरीं तौ तुम्हें ईस सीस पै धरे।
तुच्छन को देतीं जैसो नारायन रूप, तैसौ,
तुच्छ तुम्हें तुच्छ करि पायन तरे करे॥

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) गंगा जी भगीरथ की लहलही कीर्तिलता क्यों कही गयी हैं ? (२) गंगा का चरित्र देखकर चित्रगुप्त ने क्या कहा ? (३) गंगा की धवल धारा में स्नान करने का क्या फल है ? यम ने गंगा जी से क्यों चुगली की ?

लेखनार्थ—(१) 'कीरति-लता' के पहले लहलही लगाने से भाव-सौन्दर्य की क्या वृद्धि हुई ? (२) 'पंचन के देखत ही पंचमुख ह्वै गए'—का भावार्थ लिखो। (३) 'पाप-पुञ्ज लुञ्ज ह्वै गए' में पाप-पुञ्ज का लुञ्ज होना कहा गया है। इसके सौन्दर्य का स्पष्टीकरण करो।

छंद—'शिवराज-कीर्ति' में प्रयुक्त छन्दों का इस कविता के छन्दों से मिलान करो। इस कविता में किस छन्द का प्रयोग हुआ है ? इसका लक्षण बताओ।

अलंकार—इस कविता में पाँच अनुप्रास अलंकार ढूँढ़ो।

—:०:—

४८. भारतीय संस्कृति

(परिचय—इस लेख के लेखक काका कालेलकर महात्मा गांधी के अनुयायी रहे हैं। आप गांधी-दर्शन के विशेषज्ञ, प्रसिद्ध लेखक तथा विचारक हैं। आजकल वर्धा में रहते हैं।)

प्रवेशक—भारत में अनेक धर्म और भाषाएँ प्रचलित हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति एक और अखंड है। यही इस निबन्ध का विषय है।

वर्तुल विरासत क्षमता वैशिष्ट्य

भारतीय संस्कृति केवल आर्य-संस्कृति या केवल हिन्दू-संस्कृति ही नहीं है। भारतीय संस्कृति केवल प्राचीन काल का ख्याल नहीं करती। भारतीय संस्कृति का केन्द्र है हिन्दुस्तान, किन्तु उसका वर्तुल अथवा परिधि हिन्दुस्तान में सीमित नहीं है।

भारतीय संस्कृति हिन्दुस्तान के इतिहास से भी बड़ी है, क्योंकि इतिहास केवल भूतकाल का ही ख्याल रखता है। संस्कृति का सम्बन्ध भूत, वर्तमान और भविष्य से है। इतिहास अपना भविष्य नहीं जानता। संस्कृति अपने भविष्य के ध्रुवतारे पर निगाह रखकर चलती है।

हिन्दुस्तान में अनेक धर्म हैं, अनेक भाषाएँ हैं, अनेक देशों से आकर बसे हुए लोग हैं, सम्पत्ति, बुद्धि, शक्ति, कौशल, उदारता और शालीनता हर एक दृष्टि से भिन्न-भिन्न कोटि के लोग यहाँ बसते हैं। तो भी हम कहते हैं, हिन्दुस्तान की संस्कृति एक है, अखण्ड है और अविभाज्य है। बहुत से लोग इस चीज को नहीं समझ सकते कि भिन्न धर्मावलम्बी लोग भी एक संस्कृति में कैसे आ सकते हैं।

हिन्दुस्तान में शक, हूण आदि बाहर के लोग आ गये। उन्होंने न केवल यहाँ का धर्म ही अपनाया किन्तु वे संस्कृति से भी इसी देश के हो गये। हिन्दुस्तान के बाहर उनके लिए कोई स्वदेश नहीं रहा। अगर वे वहाँ से कुछ संस्कृति ले आये तो उसको यहाँ के लोगों ने अपनाया और यहाँ की भली-बुरी सब चीजें उन लोगों ने अपनायीं और वे पूरे-पूरे यहाँ के हो गये।

जब मुसलमान इस देश में आये तो यहाँ के लोगों से वे तुरन्त घुल-मिल नहीं गये। उनका गोमांसाहार यहाँ के लोग सहन न कर सके और यहाँ की मूर्तिपूजा वे भी सहन न कर सके। जब और प्राणियों का मांस खाया जाता है तब गाय का मांस खाने में क्या हर्ज हो सकता है यह उनके ध्यान में नहीं आ सका। भारत की कृषि-प्रधान संस्कृति में गाय का क्या महत्त्व है यह किसी ने भी उन्हें नहीं बतलाया और न कलाप्रिय भारतवासी मुसलमानों का मूर्तिविरोध समझ सके। अन्य देश के जड़ लोगों ने मूर्ति के नाम पर क्या-क्या अनाचार चलाये थे उसका खयाल तक उन्हें न था।

किन्तु भारतीय संस्कृति में एक बहुत बड़ी चीज थी जो अन्य देशों में बहुत कम पायी जाती है। भारत के लोग पहले तो यह मानते आये हैं कि ईश्वर के पास पहुँचने के मार्ग अनेक हैं। मनुष्य अज्ञानी है, यह कोई उसका गुनाह नहीं है। ईश्वर सर्वज्ञ है। हर मनुष्य के हृदय की बात जानता है। अगर मनुष्य में दुष्टता न हो तो उसके अज्ञान की क्षमा तो ईश्वर पहले से ही कर चुका है। ईश्वर के सामने छोटे-बड़े, पंडित और मुल्ला; विद्वान् और जंगली सबके सब अज्ञानी ही हैं। एक का अज्ञान काजल के जैसा होगा तो दूसरे का अज्ञान कोयले के समान होगा। इनमें से किसे सजा करें और किसे पुरस्कार दें।

जो मुसलमान हिन्दुस्तान में आये उन्होंने इसी देश को अपना स्वदेश बनाया, अपनी स्वभाषा छोड़कर यहाँ की भाषा को ही स्वभाषा

बनाया, बुलबुलों के साथ कोयल का गाना सुनकर भी उनका हृदय उछलने लगा। तरबूज के प्रति जो भक्ति थी वह उन्होंने यहाँ के आम को अर्पण की। वे हिन्दुस्तानी बन गये। यह बात हुई बाहर से आये हुए मुसलमानों की। किन्तु आज हिन्दुस्तान में जो मुसलमान हैं उनमें बाहर से आये हुए कितने हैं? प्रतिशत २० भी न होंगे। बाकी के सब अनादि काल से इसी देश के रहनेवाले हैं। उनके लिए हिन्दुस्तानी बनने का सवाल ही नहीं था। वे कभी गैर-हिन्दुस्तानी थे ही नहीं। वे तो व्यास, वाल्मीकि बुद्ध और शंकराचार्य के ही वंशज हैं। जिन भारतवासियों ने किसी भी कारण इस्लाम को स्वीकार किया उन्होंने कालिदास और भवभूति, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य, वाग्भट और तानसेन की अपनी विरासत छोड़ी नहीं है। मुसलमान होने से उन्होंने फारसी और अरबी को अपनाया सही किन्तु बंगाली और मराठी, तामिल और तेलगू आदि अपनी मातृभाषा को उन्होंने छोड़ नहीं दिया।

हिन्दुस्तान में इतने धर्म हैं किन्तु उन सब धर्मों का एक विशाल धर्म-कुटुम्ब बनाने की क्षमता भारतीय संस्कृति में है। भारतीय संस्कृति ने कब का कह दिया है कि मानव-कुल में प्रचलित सब प्रधान धर्म सही हैं। सभी की प्रेरणा ईश्वर से है। मनुष्यों के बीच प्रचलित होने के कारण मनुष्यों की अपूर्णता भी उनमें आ गयी है। गंगा गंगोत्री से आयी है लेकिन वहीं ठहरी नहीं है। जब तक वह विशाल सागर में विलीन न हो जाय तब तक उसे आगे बढ़ना ही है। उसमें यमुना आकर मिलेगी, सरयू और गंडकी भी आकर मिलेगी और सागर तक पहुँचते-पहुँचते हिमालय के उस पार से आनेवाली ब्रह्मपुत्रा के साथ भी उसका संगम हो जायगा। भारतीय संस्कृति की भी ऐसी ही बात है। वैदिक संस्कृति से उसका उद्गम हुआ। उसके पहले की बात हम नहीं जानते

किन्तु उसमें दुनिया भर की संस्कृतियों ने अपना-अपना कर डाल दिया है। भारतीय संस्कृति में इस्लामी और ईसाई संस्कृति मिल गयी है। इसलिए हिन्दुस्तान के इस्लाम की विशेषताएँ अरबिस्तान, ईरान या मिस्र के इस्लाम से कुछ अलग होंगी, कुछ अधिक होंगी। भारत का ईसाई धर्म इटली, फ्रांस, जर्मनी, इंगलैंड और रूस के ईसाई धर्म से कुछ अधिक सुगन्ध बताएगा। ईसाई धर्म का वैशिष्ट्य जब हिन्दुस्तान के ईसाई लोग बताने लगेंगे तो ईसाई धर्म में एक नयी समृद्धि आ जायगी। इस्लाम तथा ईसाई धर्म के हिन्दुस्तान में आने से हिन्दू धर्म की खूबी भी अधिक अच्छी तरह से स्पष्ट होने लगी है। सूफी-मत और कबीर-मत, ब्रह्म-समाज और आगाखानी सम्प्रदाय सबमें हम भारतीय संस्कृति की समन्वयकारी शक्ति देख सकते हैं।

जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, किसी भी धर्म के प्रति आदर रखना पसन्द नहीं करते, किसी शास्त्र को नहीं मानते, बुद्धि से श्रेष्ठ किसी भी चीज को स्वीकार नहीं करते, वे भी भारतीय संस्कृति से बहिष्कृत नहीं हैं। उनकी भी परम्परा इस देश में प्राचीन काल से चली आई है।

नदी में रोज नया पानी आता रहता है। एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में वह बहती है पर उसका रंग-रूप, व्यक्तित्व और सौंदर्य अक्षुण्ण ही रहता है। इसी तरह संस्कृति की भी बात है। भारतीय संस्कृति में दुनिया भर की सब संस्कृतियों का असर दिखाई पड़ता है, लेकिन वह भारतीय ही रही है। भारतीय शब्द में आर्य-प्रारम्भ की सूचना अवश्य है किन्तु वैदिक या महाभारत-काल से वह सीमित नहीं हो सकती है।

कई लोग भारतीय शब्द पर आपत्ति उठाते हैं। वे भारतीय संस्कृति का स्वभाव ही नहीं जानते। उनके लिए नाम बदल देने की कोई जरूरत नहीं है। वे उसे कोई नया नाम दें तो उसे लेने में भी कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु पुराना नाम छोड़ने में अवश्य संकुचितता

का दोष आ जाता है। मानवता का अन्तिम कल्याण ही भारतीय संस्कृति का आदर्श है। भारतवर्ष उसका केन्द्र है, मध्यबिन्दु है और उसका कार्यक्षेत्र अखिल विश्व है।

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) भारतीय संस्कृति भारतीय से भी बड़ी क्यों है? (२) भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता क्या है? (३) इस देश की संस्कृति मुसलमानों ने किस सीमा तक अपनायी? (४) भारतीय संस्कृति में एक विशाल धर्म-कुटुम्ब बनाने की क्षमता क्यों है?

लेखनार्थ—वाक्य में इनका प्रयोग करो—विरासत, क्षमता, वैशिष्ट्य, समृद्धि।

व्याकरण—पाठ के दूसरे अनुच्छेद के प्रथम वाक्य का विश्लेषण करो।

---

४९. राष्ट्र-गीत

(परिचय—इस कविता के रचयिता श्री सोहनलाल द्विवेदी की कविताओं में राष्ट्रीय भावना का राग बड़ा सुहावना और चटकीला होता है। आप जिस वस्तु का वर्णन करते हैं उसमें जान डाल देते हैं। भाषा में किसी तरह की बनावट नहीं होती। वह अपनी स्वाभाविक गति से चलती जाती है। विहाग, भैरवी, वासन्ती, पूजागीत, कुणाल आदि आपके कई कविता-संग्रह तथा काव्य छप चुके हैं।)

प्रवेशक—यह कविता भारतीय जनतन्त्र-समारोह के अवसर पर लिखी गयी थी।

रागिनी भैरवी ज्वार सौरभ

(१)

गाओ मंगल गान रागिनी !
खिली अरुण ऊषा प्राची में, चली दुकूल समेट यामिनी !
गाओ मंगल गान रागिनी !

(२)

पावन पर्व युगों में आया,
पुलकित बने प्राण मन काया,
गूँज रही आनन्द-भैरवी, मन्द हुई करुणा-विहागिनी !
गाओ मंगल गान रागिनी !

(३)

रम्य राष्ट्र-भाषा के रथ में,
चली नागरी चढ़ नव पथ में,
हिन्दी बन ललाट की बिन्दी, बना रही भू को सोहागिनी !
गाओ मंगल गान रागिनी !

(४)

चला स्वर्ण-रथ प्राची पथ में,
चला स्वर्ण-रथ इन्द्रप्रस्थ में,
सफल करो लोचन लख झाँकी, मंजु मूर्ति माँ की पुजारिनी !
गाओ मंगल गान रागिनी !

(५)

मेरे प्रजातन्त्र का नव शिशु,
जन्म ले चुका बन कर नव विधु,
जनगण-जलनिधि ज्वार ले रहा, छू दिगन्त के छोर मानिनी !
गाओ मंगल गान रागिनी !

(६)

जय हो पावनतम इस क्षण की,
जय हो जनता के जीवन की,
जय हो इस अमृत-वेला की, नित नव मधु सौरभ विकासिनी !
गाओ मंगल गान रागिनी !

अनुशीलन

चिन्तनार्थ—(१) कवि अपनी रागिनी को किस पावन पर्व के उपलक्ष में गाना गाने को कहता है ? (२) भैरवी और विहाग में क्या अन्तर है ? (३) हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रथ में चढ़कर चलने का क्या अभिप्राय है ? (४) जनगण का समुद्र क्यों ज्वार ले रहा है ?

लेखनार्थ—(१) 'ऊषा' और 'यामिनी' का वास्तविक अर्थ क्या है ? यहाँ उनका प्रयोग किस अर्थ में किया गया है और क्यों ? (२) भैरवी के पहले आनन्द और विहागिनी के पूर्व करुणा शब्द क्यों जोड़ा गया है ?

आदेश—इस कविता को कंठस्थ करो ।

—:※:—